VARTA SEPTEMBER-2020 ISSUE.qxd 9/21/2020 7:37 AM Page 1

■ वर्ष 43, अंक 7, सितंबर 2020 ■ मूल्य 20 रुपये

सामयिक वार्ता

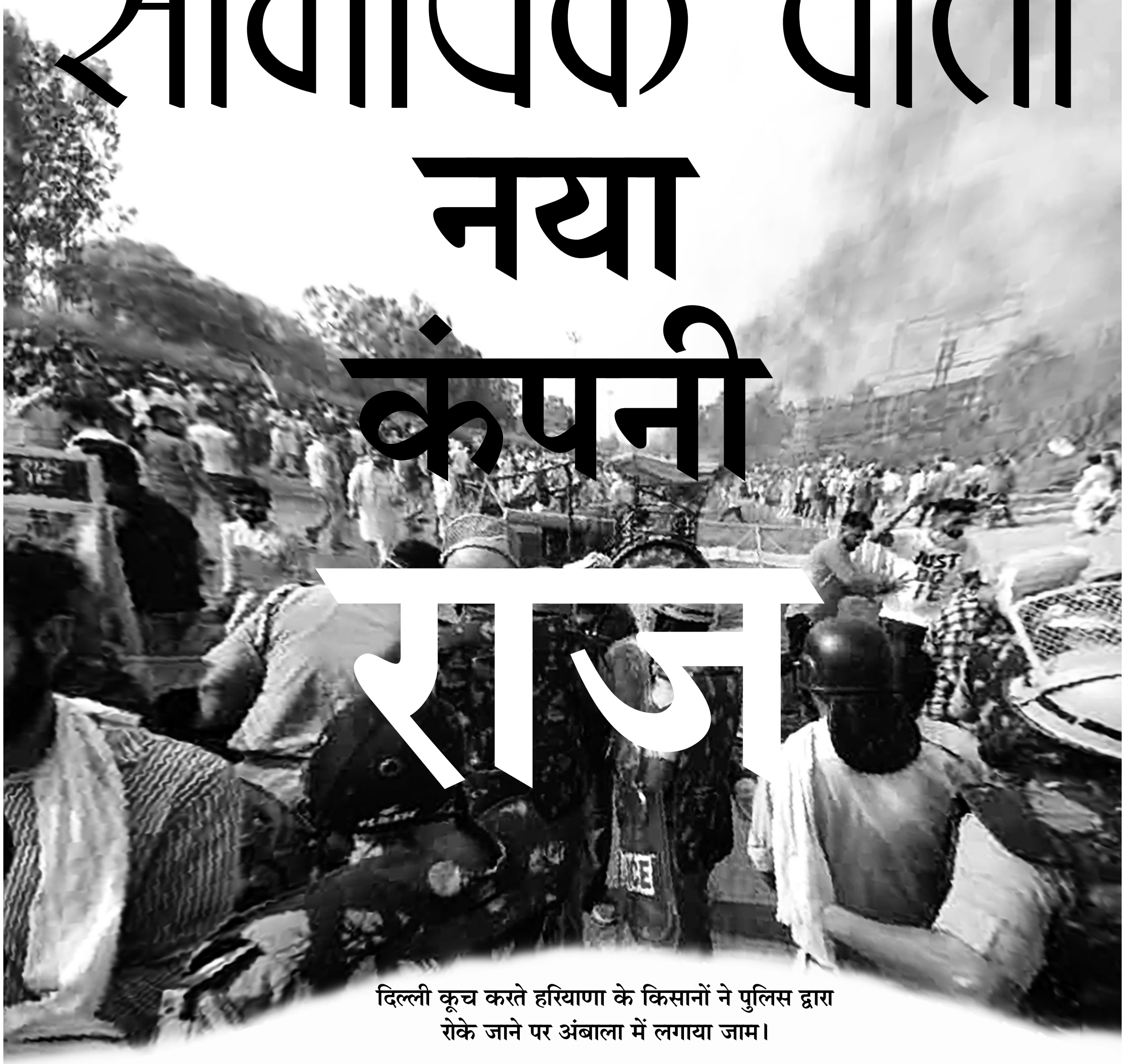

नया कंपनी राज

दिल्ली कूच करते हरियाणा के किसानों ने पुलिस द्वारा रोके जाने पर अंबाला में लगाया जाम।

किसान कंपनियों की गुलामी, मजदूर बेगारी को मजबूर

■ नरेंद्र मौर्य की कविताएं ■ स्मृतिशेष : हरीश अड्यालकर, ध्रुव, रिचर्ड ग्रोव
■ जो ज्यादा गरीबी में फंसे, उन्हीं पर जुल्म ■ कॉरपोरेट खेतीः बदल रहे कानून

नरेंद्र कुमार मौर्य की गजलें

छुपाये न छुपती ख़ुशी...

छुपाये न छुपती ख़ुशी पत्थरों की,
सुनाई पड़े है हंसी पत्थरों की।

गिरा एक दिन सर पे मेरे यकायक,
यही है मियाँ रहबरी पत्थरों की।

हमें नाव देकर के अहले सियासत,
दिखाती फिरे इक नदी पत्थरों की।

यही देखना रह गया था ख़ुदाया,
करे चाकरी आदमी पत्थरों की।

पड़े अक्ल पे देख ले तू हजारों,
नहीं है कहीं भी कमी पत्थरों की।

कभी यार सीने पे सब्ज़ा उगाकर,
करे हैं तबीयत हरी पत्थरों की।

दुखों से है निस्बत न कुछ आंसुओं से,
मिली है हमें इक सदी पत्थरों की।

भला है इसी में रहो दूर उनसे,
बुरी दोस्ती-दुश्मनी पत्थरों की।

उसे बातें बनाने...

उसे बातें बनाने की पड़ी है,
तुझे खाने कमाने की पड़ी है।

संभलता ही नहीं है घर हमारा,
मगर हमको ज़माने की पड़ी है।

दिलों को बेचने निकले हैं आशिक,
मुहब्बत को बचाने की पड़ी है।

बनाकर एक दिन तुमको लतीफा,
उसे सबको हंसाने की पड़ी है।

न देखे दाग कोई भी दिलों के,
फरिश्तों को छुपाने की पड़ी है।

विरासत की बड़ी ऊंची इमारत
सियासत को गिराने की पड़ी है।

अजब है रहबरी तेरी अंधेरे,
तुझे तो बस डराने की पड़ी है।

वही जो ले गया दिन रात मेरे,
उसे जलवे दिखाने की पड़ी है।

उसी के पास आना चाहता हूँ,
जिसे बस दूर जाने की पड़ी है।

नहीं कोई मियाँ सुनने पे राज़ी,
सभी को बस सुनाने की पड़ी है।

कहीं कमबख्त जो लगता नहीं है,
उसी दिल को लगाने की पड़ी है।

अंधेरे में सभी ख़ुश हैं तुझे क्यों,
चरागों को जलाने की पड़ी है।

अपने प्रिय शायर डॉ. राहत इंदौरी के नाम

मियाँ जिस दौर में राहत नहीं है,
हमें उस दौर की चाहत नहीं है।

अभी सूरज ने आंखें मींच ली हैं,
गजब है आपको हैरत नहीं है।

जिसे तुम फाड़ कर ही भूल जाओ,
सुनो ये शायरी है, खत नहीं है।

नहीं भारत किसी के बाप का है,
कहा सच झूठ की आदत नहीं है।

इमारत को गिरा सकती सियासत,
मिटा दे शायरी ताकत नहीं है।

गजल कह कर सिखाये जो मुहब्बत,
सभी के पास ये दौलत नहीं है।

उन्हें भी वो बना सकता था इंसा,
फरिश्तों को मगर फुरसत नहीं है।

गलत को वो गलत कहता रहा है,
मगर उस झूठ में हिम्मत नहीं है।

समझ लो यार उसकी शायरी को,
मुहब्बत हैं वहाँ नफरत नहीं है।

वही तो है अज़ीमुश्शान शायर,
उसे कहने में सच दिक्कत नहीं है।

उसे क्यों गालियाँ तुम दे रहे हो,
बड़े कमजर्फ हो, गैरत नहीं है।

सामयिक वार्ता अब
www.lohiatoday.com
पर भी पढ़ सकते हैं।

इस अंक में

जो गरीबी के जंजाल में फंसे, उन्हीं पर जुल्म — 08

कॉरपोरेट खेती के लिए बदले जा रहे कानून — 14

कोविड-19 महामारी के प्रभाव और आगे की राह — 16

आजादी के आंदोलन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का योगदान — 18

हागिया सोफिया का संग्रहालय से मस्जिद बननाः बदल रहा है समय — 20

राजसत्ता, पूंजीसत्ता और धर्मसत्ता के गठबंधन खोलती पुस्तक — 22

सामयिक वार्ता

सितंबर 2020, वर्ष 43, अंक : 7

संस्थापक संपादक : किशन पटनायक

संपादक : अफलातून

संपादन सहयोग
प्रो. बलबीर जैन, अरविन्द मोहन, हरिमोहन, राजेन्द्र राजन, सत्येन्द्र रंजन, प्रियदर्शन, अरुण त्रिपाठी, प्रो. महेश विक्रम सिंह, लोलार्क द्विवेदी, संजय गौतम, चंचल मुखर्जी, कमल बनर्जी, संजय भारती

परामर्श मंडल
सच्चिदानंद सिन्हा, प्रो. कश्मीर उप्पल, स्मिता

रूप सज्जा : राम सिंह

कार्यालय : 20ए, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091

ईमेल : varta3@gmail.com, sjp.delhistate@gmail.com

सदस्यता शुल्क :

एक प्रति	:	20 रुपए
वार्षिक शुल्क	:	200 रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क	:	300 रुपए
छह साला शुल्क	:	1000 रुपए
आजीवन शुल्क	:	3000 रुपए

खाता नाम : सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा : सोनारपुरा, वाराणसी (उ.प्र.)
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या : 40170100005458
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहां दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं, S के बाद O (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
(इस खाते में पैसे जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना ई-मेल अथवा मोबाइल 08765811730/ 08004085923 पर दें।)

संपादकीय

अब उठ खड़े होने का वक्त

यह इस सदी का कर्नवालिस पल है। उन्नीसवीं सदी में भूमि बंदोवस्त कानून लाकर जैसे किसानों की जमीन छीनने और उन्हें अत्याचारी जमींदारों के तहत पिसने को मजबूर कर दिया गया था, ठीक उसी तरह कृषि संबंधी तीन नए कानूनों के जरिए किसानों की उपज और खेती पर भी ठेके के जरिए मुट्ठीभर कंपनियों का राज का इंतजाम कर दिया गया है। यह 'याराना पूंजीवाद' का भी नायाब नमूना है, जिनकी इस महामारी, महामंदी में भी संपत्तियों में इजाफा हो रहा है। शायद यही है आपदा में अवसर तलाशने का मंत्र, जिसे नरेंद्र मोदी कहते आए हैं। जरा देखिए इस दौर में क्या हो रहा है। काले कानूनों के जरिए किसानों को कंपनियों की मर्जी का गुलाम बना दिया गया, नए श्रम कानूनों के तहत मजदूरों के सदियों से हासिल हक छीन लिए गए। यह तो नमूना भर है। क्या हुआ और क्या हो रहा है, इस पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

नोटबंदी के समय से रोजगार-नौकरी में शुरू हुई गिरावट देशबंदी (लॉकडाउन) के दौरान और उसके बाद भयंकर रूप से तेज हो गई है। कई आकलन बताते हैं कि इस दौरान पांच करोड़ से अधिक लोगों का रोजगार खत्म हुआ है। विस्मय कर देने वाली -24 प्रतिशत की आर्थिक गिरावट इसी दौरान दर्ज की गई है। उच्च-मध्यम वर्ग और उससे नीचे जितने भी वर्ग बना लें, उनमें घनघोर निराशा और चिंता व्याप्त है। रोजगार, नौकरी के साथ कुल रोजगार में 93 प्रतिशत हिस्सेदारी वाला असंगठित क्षेत्र कराह रहा है। देशबंदी के दौरान हजारों किलोमीटर की पदयात्रा कर अपने गृह स्थानों को पहुंचा श्रमिक परिवार वहां भी बिना रोजी-रोजगार के है। मनरेगा में नाममात्र का काम है तो दूसरे छोटे मंझोले उद्योग-धंधे धड़ाधड़ बंद हो रहे हैं। ऐसी हताशा की स्थिति में जो बढ़ रहा है, वह समाज और सरकारी तंत्र के प्रति अविश्वास है। समाज को निज और पराए के भेद में बांटने की यह सबसे मुफीद परिस्थिति होती है और इसका फायदा वर्षों से छुपे तत्व उठा रहे हैं। समाज और जीवन के हर क्षेत्र में मेरे-तेरे के भाव को गहरा कर, काल्पनिक दुश्मन की छवि बनाकर उसे असलियत का जामा पहनाया जा रहा है, और उस दुश्मन के खिलाफ उन्माद पैदा कर राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की छवि चमकाने के प्रयास तेजी से चल रहे हैं। कई बार यह सफल होता दिख भी रहा है।

अतीत में यह आजमाया हुआ नुस्खा है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पराजित जर्मनी पर मित्र राष्ट्रों ने जब अपनी संधि थोपी तो जर्मनी में भारी असंतोष पनपा। यह असंतोष रोजगार- उद्योग के खत्म होने और आर्थिक विपन्नता के कारण पूरे जर्मनी में आया था। लेकिन इस असंतोष का ध्रुवीकरण एक समुदाय के खिलाफ करने में सफलता हासिल करके एडोल्फ हिटलर ने संसदीय रास्ते से जिस क्रूर तानाशाही का सूत्रपात किया, उसकी झुलसन दशकों तक जर्मनी के साथ ही पूरी दुनिया को झेलनी पड़ी। हिटलर का तो अपनी ही तरह का अंत हो गया, लेकिन उसकी विचारधारा के प्रशंसक और उस रास्ते पर चलकर अपने समाजों में काल्पनिक दुश्मन खड़ा कर उस पर वास्तविक हमले को जायज ठहराने की पूरी परंपरा बनी रही है। ऐसी मुहिम में कानून का शासन, लोकतंत्र, मानव अधिकार को उपहास की दृष्टि से देखा जाता है और उसके कमजोर पक्षों को अपने हित में साधने के बाद हिकारत के भाव से फेंक देने की प्रवृत्ति होती है। पहले से मौजूद राष्ट्रीय, सामाजिक तंत्र इसे रोकने की कोशिश तो करते हैं, लेकिन उनके सफल होने में बहुत संदेह रहता है। भारत के पड़ोसी देशों- पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान में स्वस्थ सामाजिक तंत्रों को ध्वस्त कर रूढ़िवादियों, कट्टरपंथियों और अमानवीय तत्वों के हावी होने के उदाहरण हैं। तुर्की में हाल ही में दशकों पुरानी अतातुर्क की अवधारणा को ध्वस्त कर कट्टरवाद का अट्टहास हागिया सोफिया संग्रहालय मामले में देखा जा सकता है।

हम भारत में सीधे-सीधे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परिवार के बारे में बात कर रहे हैं, जिनका आदर्श हिटलर की नस्लीय शुद्धता की अवधारणा रही है। इस नस्लवाद में धर्म का तड़का लग जाए तो उनके लिए सोने पर सुहागा। तुर्रा यह है कि ऐसी विचारधारा को बहुसंख्यक समुदाय में भी बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए छोटे पापों को जरूरी मानकर वैधानिकता मिल जाती है। ऐसी सामाजिक शक्ति पाकर यह बर्बर शक्ति अपने बर्बरतम रूप में अट्टहास करने लगती है। आज सत्ताधारी विचारधारा इसी निर्द्वंद्व अट्टहास में मशगूल है। यहां उदाहरण के रूप में हम पांच घटनाओं को प्रस्तुत करना चाहेंगे।

15 सितंबर को उच्चतम न्यायालय में एक ऐतिहासिक अंतरिम फैसला आया है। आरएसएस विचारधारा के सुदर्शन चैनल ने पिछले कुछ महीनों से ऐसा दुरभियान चलाया कि मुसलमान देश की प्रतिष्ठित और सर्वोच्च नागरिक सेवा चयन संगठन संघ लोक सेवा आयोग में घुसपैठ कर रहे हैं। अपने अफवाही ब्रिगेड के जरिए तथ्यहीन झूठ को हजार बार बोलकर सही साबित करते हुए इसने कथित खोजी रिपोर्टिंग 'बिंदास बोल' की शृंखला शुरू कर इसमें यह खुलासा किया कि बड़ी संख्या में मुसलमानों का इन सेवाओं में साजिशन चयन हो जाता है। इस पर दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रोक लगाए जाने के बाद केंद्र सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने चैनल को कुटिल छूट यह कहकर प्रदान कर दी कि प्रसारण के लिए

सामयिक वार्ता अब www.lohiatoday.com पर भी पढ़ सकते हैं।

वह जिम्मेदार होगा। उच्चतम अदालत में समाज के जिम्मेदार लोगों के जाने के बाद यह फैसला आया है। इसमें अदालत ने चैनल और सरकार को तमाचा मारते हुए इस प्रसारण पर रोक लगा दी है, हालांकि अंतिम फैसला आना अभी बाकी है। अदालत से इस प्रसारण को वैमनस्य फैलाने वाला और एक समुदाय को लांछित करने के प्रयास के रूप में स्थापित कर दिया। यहां ध्यान देने की बात है कि जब चैनल के वकील ने कहा कि मंत्रालय की ओर से इस कार्यक्रम के प्रसारण को मंजूरी दी गई है तो शीर्ष अदालत की पीठ ने पूछा कि क्या मंत्रालय ने इस अनुमति को देते समय अपने दिमाग का इस्तेमाल भी किया था। अदालत ने यह भी पूछा कि अभिव्यक्ति और पत्रकारिता की स्वतंत्रता के नाम पर क्या किसी पूरे समुदाय को लांछित करने की अनुमति दी जा सकती है? जाहिर है कि देश की आबादी में लगभग 15 प्रतिशत आबादी वाले मुस्लिम समुदाय की इस सर्वोच्च और प्रभावी प्रशासनिक सेवा में अधिकतम भागीदारी 4-5 प्रतिशत से अधिक नहीं रही है। यह न केवल एक पूरे समुदाय को बदनाम करने की साजिश है बल्कि देश की प्रतिष्ठित और अब तक स्वच्छ चयन प्रक्रिया वाली मानी जाने वाली संस्था यूपीएससी की छवि को भी बर्बाद करने का कुत्सित प्रयास है।

दूसरी घटना में, 15 सितंबर को ही उत्तर प्रदेश सरकार ने एक आदेश जारी कर राज्य में मुगलकालीन संज्ञा वाले जगहों, वस्तुओं और ऐतिहासिक महत्व के संस्थानों की सूची बनाने का आदेश दिया। घोषणा की है कि उन नामों को बदला जाएगा। आगरा का मुगल संग्रहालय नाम बदलकर शिवाजी संग्रहालय कर भी दिया गया है। यूपी सरकार तर्क यह दे रही है कि समाज और देश को गुलाम बनाने वाली शक्तियों के नाम हटाए जाएंगे। लेकिन क्या सरकार इसी तर्क के आधार पर बाबर को आमंत्रित करने वाले राणा सांगा, हल्दी घाटी के युद्ध में मुगल सेनापति मानसिंह और राजस्थान उच्च न्यायालय परिसर में स्थापित मनु महाराज की मूर्तियों को हटाने का समर्थन करेगी? अगर नहीं तो यह उन्मादी सरकार की समाज को दूषित करने भर की कार्रवाई मानी जाएगी। हम यहां डॉ. राममनोहर लोहिया की उस उक्ति का भी प्रसंगवश उल्लेख करना चाहेंगे कि 'हर हिन्दू को समझना चाहिए कि रजिया, शेरशाह, जायसी वगैरह हमारे पुरखे हैं। साथ ही हर मुसलमान को यह सीखना चाहिए कि गजनी, गोरी और बाबर लुटेरे थे और हमलावर थे। यह दोनों जुमले साथ-साथ हों हिंदू और मुसलमान के लिए।' लेकिन यूपी सरकार समाज बनाने नहीं तोड़ने वाली विचारधारा की है।

तीसरी घटना में, कुछ दिन पहले ही दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्राओं के एक समूह 'पिंजड़ा तोड़' की दो प्रमुख कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी को गलत ठहराते हुए जमानत दे दी। अदालत ने यहां भी टिप्पणी की कि यह संविधान प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन है। अदालत ने इस बात पर गौर किया कि पुलिस द्वारा छात्राओं पर लगाए गए नफरत फैलाने के आरोप बेबुनियाद हैं।

चौथी घटना में अलीगढ़ में छात्रों के बीच दिए भाषण को राजद्रोह बताकर जेल में डाले गए गोरखपुर के चर्चित डॉक्टर कफील को जमानत देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यूपी सरकार और उसकी पुलिस की मंशा को विद्वेषपूर्ण बताया। उच्च न्यायालय ने डॉ. कफील की गिरफ्तारी को भी संविधान और न्याय व्यवस्था का हनन बताया। अदालत ने उत्तर प्रदेश सरकार की कार्रवाई को संविधान विरुद्ध बताया। इस भाषण में डॉ. कफील नामचीन शायरों के कुछ शेर बोलते नजर आ रहे हैं, जिन्हें पुलिस और जिलाधिकारी ने विद्वेषपूर्ण मानकर उन पर रासुका लगाया था। यहां भी यूपी सरकार को मुंह की खानी पड़ी और आधी रात को डॉ. कफील को जेल से रिहा करना पड़ा।

पांचवी घटना में असम में रंगोली संस्था द्वारा प्रस्तुत मूवी को नफरत फैलाने वाला बताकर राज्य के डीजीपी द्वारा रोके जाने को गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने तथ्यहीन और सरकार की बदनीयती बताकर खारिज कर दिया। इस मूवी को केवल इसलिए रोका गया था कि उसमें अभिनय करने वाली नायिका हिन्दू समुदाय की थी जबकि अभिनेता मुसलमान। कथानक के अनुसार नायक नायिका को मदद करता है और दोनों एक-दूसरे के अच्छे दोस्त बन जाते हैं। लेकिन घृणा, संकीर्णता की धरातल पर खड़ी राज्य की भाजपा सरकार को यह कथानक लव जिहाद सरीखा लगा।

इन कुछ उदाहरणों भर से स्पष्ट होता है कि समाज में बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर जाकर नफरत और सामाजिक विद्वेष के बीज न केवल बोए जा रहे हैं बल्कि उनके पल्लवित-पुष्पित करने के दुरभि प्रयास भी किए जा रहे हैं। समाज के एक प्रभावशाली तबके के प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन के बिना यह संभव नहीं हो सकता है। साफ है कि दुष्ट अभियान बिना किसी जिम्मेदारी के चल रहा है। समर्थन करने वालों को यह भी नहीं दीख रहा कि अतीत में वे भी इस कुटिल अभियान का शिकार बनते रहे हैं। समाज और देश में विपक्षी विचार और संगठनों के ध्वस्त हो जाने से यह अभियान सामाजिक और राजनीतिक तौर पर फिलहाल बेखटके चल रहा है।

सवाल यह है कि यह विकट समय केवल अपने प्रतिपक्षियों को ही नहीं, बल्कि इनसे निपट लेने के बाद पूरे समाज और संस्कृति पर टूट पड़ने वाला है। इसका प्रतिरोध समय रहते जरूरी है। समाज को सचेत होने की जरूरत है। अगर समाज इसी तरह प्रमाद में बहकर इनके सारे व्यभिचारों को कथित 'बड़े उद्देश्य की पूर्ति में छोटे-मोटे पापों' के तौर पर देखता रहा और दूसरे समुदाय पर हो रहे नफरती हमलों से मजे लेता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब बाकी समुदायों पर भी किसी न किसी बहाने यह कहर टूटेगा। तब भारतीय समाज सनातन गरिमा को खोकर उसी तरह की दुष्ट शक्तियों की कठपुतली बनकर रह जाएगा, जो आज हम अपने आसपास देख-सुन रहे हैं। ऐसे में जिम्मेदार समाज की ओर से प्रतिरोध का तंत्र फिर से संगठित करने की ऐतिहासिक जरूरत है। व्यक्तिवाद की सुखद चदरिया ओढ़े नागरिकों के लिए चेतावनी है कि वे शिक्षण, संगठन और संघर्ष को जाग्रत करने के ऐतहासिक कर्तव्य का पालन करें और व्यक्तिवाद की खाल से अपने को बाहर निकालें। अन्यथा समय हाथ से निकल जाने पर अपने वश में कुछ नहीं रहेगा। समय तो उनका अपराध लिखेगा ही। ■

जीडीपी में गिरावट रोकना मुश्किल नहीं था

अप्रैल-जून तिमाही में देश की जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) में 24 फीसदी की रिकॉर्ड गिरावट आई है। यह गिरावट अन्य देशों के मुकाबले बहुत ज्यादा है। इसका कारण कोविड महामारी को ही माना जाता है पर भारत के परिप्रेक्ष्य में उससे भी बड़ा कारण नवउदारवादी नीतितंत्र है। गौरतलब है कि कोविड के पूर्व देश की अर्थव्यवस्था आर्थिक सिकुड़न (स्लोडाउन) से ग्रस्त थी, जिसका कारण समग्र मांग का अभाव था। इस तिमाही में कोरोना-जन्य नुकसान तो हुआ ही है; पर इससे भी ज्यादा नुकसान समग्र मांग के अभाव के कारण हुआ है।

बहुत से देशों ने काफी हद तक इस तरह के नुकसान से अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने में कामयाबी हासिल की है। क्योंकि इन देशों ने लॉकडाउन के साथ ही व्यापक स्तर पर कल्याणकारी कार्य शुरू कर दिए थे। इनमें समुचित बेरोजगारी भत्ता प्रमुख रहा है। स्वरोजगारी कारोबारियों की समुचित मदद की भी व्यवस्था की गई है। इन कदमों से दोतरफा फायदा होता हैः एक, मजदूरों और स्वरोजगारी कारोबारियों के परिवारों की गुजर-बसर का इंतजाम हो जाता है। दो, जनसाधारण के पास पर्याप्त क्रयशक्ति होने से समग्र मांग के अभाव की समस्या काफी हद तक नियंत्रित हो जाती है।

कल्याणकारी कार्यक्रमों से अर्थव्यवस्था में तरलता (लिक्विडिटी) में बढ़ोतरी होने पर भी दामों में ज्यादा उछाल नहीं आता है। बेरोजगारी भत्ता आदि के ट्रांसफर से हासिल नकदी से खरीदारी में बढ़ोतरी होती है, जिससे फैलाव (स्पिल ओवर) के असर से अर्थव्यवस्था में रोजगार और उत्पादन में वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में इस तरह की परिस्थितियों में कीन्ज के गुणक प्रभाव की अपेक्षानुसार तरलता में बढ़ोतरी के जरिए सरकार द्वारा कल्याणकारी मदों पर खर्चे बढ़ाने से रोजगार और उत्पादन में वृद्धि होती है। कल्याणकारी नीतियों से कई देशों में कोरोना-जन्य महामंदी के नकारात्मक असर को काफी हद तक कम किया जा सका है।

भारत में तीस साल से कल्याणकारी नीतियों को व्यवस्थित तरीके से नकारा जाता रहा है। यह प्रक्रिया वाशिंगटन सहमति पर आधारित नवउदारवादी सुधारों को अपनाने के फैसले के साथ शुरू हो गई थी। तब से सभी सरकारों ने एक जैसे आर्थिक नीतितंत्र पर अमल किया है। मौजूदा परिस्थितियों में भी कल्याणकारी नीतियों को नकारना काफी हैरान करने वाला फैसला है।

नवउदारवादी नीतियों से भारत में आर्थिक ध्रुवीकरण अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया है। ऊपरी तबकों की 20 फीसदी आबादी की औसत आमदनी निचले तबकों की 80 फीसदी की औसत आमदनी से दस गुना है और इस गैरबराबर संमृद्धि से आर्थिक संवृद्धि की रफ्तार पर ही ब्रेक लगना शुरू हो चुका है।

पिछले वित्त वर्ष की आर्थिक सुस्ती (स्लोडाउन) की शुरुआती वजह कारों और एयर कंडीनशनर जैसी विलास की वस्तुओं की बिक्री में आई गिरावट थी। पिछले दो-तीन दशकों के दौरान औद्योगिक विकास में ये उद्योग अग्रणी रहे हैं, क्योंकि इस दौरान इन वस्तुओं के बहुत से नए खरीदार उभर आए थे। पर इन वस्तुओं के खरीदारों (जोकि ऊपरी 20 फीसदी आबादी तक ही सीमित है) के संतृप्त (सेचयर्शन) स्तर पर पहुंचने के साथ ही इन वस्तुओं की मांग में पिछले साल काफी कमी आ गई थी। इससे काफी व्यापक स्तर पर नकारात्मक असर पड़ा था। ध्रुवीकृत संमृद्धि के परिप्रेक्ष्य में मौजूदा नीतियों के रहते यह समस्या लाइलाज ही थी। इस समस्या के ऊपर कोरोना की समस्या आ खड़ी हुई है।

विगत तीन दशकों के पुनरावलोकन से स्पष्ट है कि कल्याणकारी नीतियों से ही बराबरी और संमृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। नवउदारवादी नीतियों में ध्रुवीकरण और इसके परिणामस्वरूप विकासहीनता (स्टेग्नेशन) निहित है। इन वर्षों में सरकारी स्कूलों और अस्पतालों का विकास तो अवरुद्ध हुआ है और इनकी बहुत सी स्थापित इकाइयों को रोजमर्रा के कामों को करना भी बहुत मुश्किल हो गया है। क्योंकि जरूरी संसाधनों की आपूर्ति नहीं की जा रही है। कई अस्पतालों में डॉक्टर और स्टाफ नहीं हैं तो कइयों में दवाइयां नहीं हैं। बहुत से स्कूलों का भी यही हाल है। सरकारी शिक्षण सुविधाओं के अभाव के कारण देश में अशिक्षित और अकुशल श्रमिकों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। इससे जनसांख्यिकीय फायदे (डेमग्रेफिक डिविडेन्ड) की उम्मीद पर पानी फिरता नजर आ रहा है।

सदियों के संघर्ष से हासिल मजदूर हक छीन लिए गए

जिन श्रम कानूनों में उदारीकरण के दौर के बाद से ही बदलाव के लिए नव-पूंजीवाद के पैरोकार गला फाड़ते रहे हैं, लेकिन कोई सरकार, पहले कार्यकाल में मोदी भी नहीं, इनमें बदलाव की हिम्मत नहीं जुटा पाई थी, कोरोना वायरस जैसी आपदा के बहाने वह कर दिया गया है। अब 300 तक कामगार वाली इकाइयों को नौकरी से हटाने के लिए कोई कानूनी प्रक्रिया से नहीं गुजरना होगा। यानी मजदूर को कोई कानूनी संरक्षण नहीं मिलेगा। सदियों के संघर्ष से हासिल अधिकार छीन लिए गए। यह तो अभी शुरुआत है, जो होगा उसकी तस्वीर खासकर उत्तर प्रदेश सरकार पहले ही पेश कर चुकी है। आठ घंटे के बदले 12 घंटे काम और पांच साल तक नौकरी पक्की न होने को कानूनी रूप देने की कोशिश फिलहाल तो टल गई है, लेकिन अगली बार वह नहीं होगा, इससे कहां इनकार किया जा सकता है। यही नहीं, अब आगे मजदूर संघ बनाने पर भी पाबंदी लग जाए, तो हैरत नहीं होनी चाहिए। यानी कुल मिलाकर यह नई बेगारी प्रथा की शुरुआत जैसा है, जो अंग्रेजों ने ही शुरू किया था। क्या अब भी लोगों को आवाज नहीं उठानी चाहिए।

नशे में बॉलीवुड और झूमते मीडिया चैनल

यमक अलंकार के उदाहरण के तौर पर पढ़ाया और रटाया जाने वाला कविप्रवर बिहारी का दोहा-कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय, वा खाए बौराय जग वा पाए बौराय : सुशांत सिंह राजपूत, उनकी प्रेमिका रिया चक्रवर्ती और उग्र राष्ट्रवादी बयानबाजी के कारण चर्चा में आई कंगना राणावत के आरोपों के कारण चल रहे क्रूर और सिहरन पैदा करने वाले ड्रामे पर ज्यादा सटीक बैठता है। कंगना राणावत का यह आरोप एकदम गलत नहीं है कि बॉलीवुड में नशा करने वाले लोग हैं, लेकिन उनकी इस बात में सनसनी भरा अतिरेक है कि बॉलीवुड के 99 प्रतिशत लोग नशीली दवाओं का सेवन करते हैं। इतना ही नहीं, इसी आधार पर आगे बढ़कर उन्होंने बॉलीवुड को मिनी पाकिस्तान कहकर एक और विवाद खड़ा कर दिया है। इस पर शिवसेना नेताओं की प्रतिक्रिया वैसी ही है, जैसी देश के तमाम चैनल रिया चक्रवर्ती को लेकर कर रहे हैं। सुशांत सिंह राजपूत जैसे प्रतिभाशाली कलाकार की आत्महत्या दुखद और बेचैन करने वाली है। उसका कारण अवसाद था या उन्हें नशे का आदी बनाने वाली संगत, इसकी जांच भी एक संवेदनशील जांच है और इससे हमारे समाज और युवाओं का भविष्य जुड़ा हुआ है। शायद इसीलिए सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले की सीबीआई जांच का आदेश दिया भी। लेकिन इस पूरी जांच को जिस तरह भाजपा ने बिहार चुनाव में भावनात्मक लाभ उठाने के लिए सनसनीखेज बना दिया है, उसमें यही लगता है कि चरस, गांजे और कोकीन से ज्यादा बॉलीवुड सत्ता और ग्लैमर के नशे का शिकार है।

नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो ने इस मामले में अब तक रिया चक्रवर्ती समेत आठ लोगों को गिरफ्तार कर लिया है। रिया का जितना दोष है उतनी सजा उन्हें मिलनी चाहिए, लेकिन सुशांत सिंह राजपूत का जितना दोष था उसकी सजा अब किसे देंगे। शायद लोग यह कह कर छुट्टी पा लेंगे कि उनकी मौत ही उनकी सजा थी। लेकिन जो गलती सुशांत ने की होगी उसकी सजा रिया को केवल इसलिए दी जाए कि उसने उनसे प्रेम किया और साथ रह रही थी। एक लड़की की इतनी हिम्मत कैसे हो सकती है, यह नाजायज है। केंद्र में सत्ता में बैठी और बिहार में फिर सत्ता में आने को आमादा पार्टी अपने चहेते चैनलों के एंकरों से बिहार से देश भर के वातावरण में जो नशा पैदा कर रहे हैं वह बॉलीवुड के नशे से ज्यादा घातक है। क्योंकि बॉलीवुड का नशा तो संजय दत्त, फरदीन खान, रणवीर कपूर, हनी सिंह और प्रतीक बब्बर जैसे कलाकारों के व्यक्तिगत इलाज से ठीक हो जाएगा, लेकिन लोकतंत्र नारी विरोध और सत्ता को किसी कीमत पर प्राप्त करने का जो नशा चढ़ेगा, वह तो पूरे देश का नाश करके मानेगा। बॉलीवुड में नशे की प्रवृत्ति पुरानी है और उसका इलाज सिर्फ सुशांत सिंह राजपूत के मामले से नहीं हो जाएगा। उसके लिए लंबा इलाज करना होगा। संजय दत्त ने स्वीकार किया है कि जब उनके पिता सुनील दत्त उनका इलाज कराने उन्हें अमेरिका ले गए तो अस्पताल में उन्हें एक फार्म दिया गया। उस फार्म में यह भरना था कि उन्होंने कौन सा नशा किया है। चौंकाने वाली बात यह है कि संजय दत्त ने उन सभी दवाओं पर सही लगाया जो उस फार्म में दर्ज थीं, क्योंकि उन्होंने हर तरह का नशा किया था। फरदीन खान तो 2001 में कोकीन खरीदने में अपराधी पाए गए थे। रणवीर कपूर ने माना कि उन्होंने 12 साल की उम्र से नशा करना शुरू किया था।

जाहिर है कि नशा बॉलीवुड में हो या किसी शैक्षणिक संस्थान में, उससे मुक्ति दिलाने के लिए उसके जिम्मेदार लोगों को आगे आना चाहिए। पंजाब तो पूरा प्रांत ही नशे की चपेट में है और सरकार बदलने के बावजूद उससे मुक्ति नहीं मिल रही है। इसके बावजूद नशे से मुक्ति दिलाने का कार्यक्रम नशा करके नहीं किया जाना चाहिए उसे होशोहवास में करना चाहिए। नशे में फंसा हुआ व्यक्ति समाज का दुश्मन नहीं है और न ही उसे उत्पीड़ित किया जाना चाहिए। वह हमदर्दी का हकदार है और कानून को अपना काम करते हुए सनसनी से बचना चाहिए। नहीं तो शराबी फिल्म का वह गीत प्रासंगिक हो उठेगा कि नशे में कौन नहीं है मुझे बताओ जरा।

महामारी और महामंदी की दोहरी व्यथा में देश

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) के पहले सीरो सर्वे पर आधारित रिपोर्ट के अनुसार, मई-2020 की शुरुआत तक देश में अनुमानतः 64 लाख लोग कोरोना वायरस से संक्रमित हो चुके थे। इसका मतलब है कि उस वक्त तक ये लोग कोरोना के संक्रमण की चपेट में आए, लेकिन 5-7 दिनों के अंदर इन लोगों में एंटीबाडी बनने शुरू हो जाने से वायरस इनके शरीर में पनप नहीं पाया था। सीरो सर्वे से यह पता लगता है कि इतने लोगों के शरीर में कोरोना के लिए एंटीबाडी बनी है।

लॉकडाउन-1 और लॉकडाउन-2 के 40 दिनों में पहचाने गए संक्रमितों की संख्या 42 हजार थी और इन्हीं दिनों में किए गए सीरो सर्वे के अनुसार यह तादाद अनुमानतः 64 लाख थी। जाहिर है कड़े लॉकडाउन से संक्रमण के फैलाव पर अंकुश नहीं लगाया जा सका। लॉकडाउन एक आजमाई हुई सशक्त नीति है। भारत इस मामले में अपवाद क्यों है? इसका कारण है- पूरक नीतियों के साथ ही लॉकडाउन प्रभावी होता है। जिन देशों ने लॉकडाउन के साथ प्रभावित आबादी की गुजर-बसर के लिए पर्याप्त बेरोजगारी भत्ता आदि की समुचित व्यवस्था की थी, वहां इसका उल्लेखनीय असर हुआ है।

भारत में गुजर-बसर की व्यवस्था न होने से बहुत से प्रवासी श्रमिकों का जिस तादाद में पलायन हुआ है, उससे लॉकडाउन जैसा सशक्त कदम भी प्रभावहीन हो गया है और देश महामारी और महामंदी की दोहरी व्यथा में धंसता जा रहा है। पांच माह बीत जाने पर भी स्थिति सुधारने के लिए कोई प्रभावी कदम नहीं उठाए गए हैं, यह बहुत चिंता का विषय है। ■

जो गरीबी के जंजाल में फंसे, उन्हीं पर जुल्म

बलबीर जैन

शाबाश सरकार बहादुर! जिनकी महामारी और देशबंदी से रोजी-रोटी छिनी, उन्हीं को और मजबूर करने की अर्थनीति तो लाजवाब है। मजदूरों के हक छीनने के लिए श्रम कानूनों को बदल दिया गया और किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य और आस-पास की मंडी की सुविधा भी छीन ली गई। इस पूरे महामंदी के दौर में एकमात्र कृषि क्षेत्र ही ऐसा है, जहां थोड़ी सकारात्मकता दिख रही है तो अब उसी का दोहन करना है। हालांकि इस वक्त दोहरी विपदा के कारण देश बहुत ही मुश्किल दौर से गुजर रहा है। एक तरफ कोविड-19 महामारी के फैलने का सिलसिला रोका नहीं जा सका है तो दूसरी तरफ, आबादी के एक बड़े हिस्से की रोजी-रोटी की समस्या दिन-ब-दिन विषम होती जा रही है। पांच महीने से ज्यादा अरसे की बेरोजगारी से करोड़ों परिवार गरीबी की चपेट में आते जा रहे हैं। इन प्रभावित परिवारों को समुचित मदद नहीं मिलने से दीर्घकालिक गरीबी में बहुत ज्यादा इजाफे की आशंका बलवती हो गई है।

किस तबके को महामारी ने किस कदर प्रभावित किया हैः इसको जानने के लिए महामारी से उत्पन्न महामंदी के संरचनात्मक प्रभावों को समझना जरूरी है। कृषि, किराना, खाद्य पदार्थ, दवाइयों के कारोबार के अलावा लगभग सभी कारोबार में उत्पादन घटा है। होटल, रेस्तरां, पर्यटन, एयरलाइन, बस सेवाएं, टैक्सी सेवाएं आदि सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। कई कारोबार बंद पड़े हैं। टेक्सटाइल जैसे उद्योगों में भी आधी क्षमता से भी कम उत्पादन हो रहा है।

महामारी के साथ महामंदी का दौर भी शुरू हो गया है, जिसकी चपेट में गैर-कृषि क्षेत्र का बहुत बड़ा हिस्सा आ चुका है। कृषि क्षेत्र पर देश की आधी आबादी निर्भर है, पर इस क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में मात्र 17 फीसदी योगदान है। इस तरह कृषि क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आमदनी देश की औसत आमदनी के तकरीबन तीसरे हिस्से के बराबर है। जबकि गैर-कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आमदनी कृषि क्षेत्र के मुकाबले तकरीबन पांच गुना है। इससे दो बातें स्पष्ट हैं- पहली, कृषि क्षेत्र में औसत आमदनी का स्तर इतना कम है कि इस क्षेत्र के द्वारा देश को महामंदी से उबारने में ज्यादा भूमिका की उम्मीद नहीं की जा सकती है। दूसरी, कृषि क्षेत्र की यह कमजोर स्थिति और कृषि क्षेत्र और गैर-कृषि क्षेत्र के बीच इतनी ज्यादा गैर-बराबरी विगत 70 साल की कृषि-विरोधी नीतियों का ही नतीजा है। समाजवादी चिन्तक सच्चिदानंद सिन्हा की चर्चित पुस्तकोंः 'इंटरनल कालोनी' (1973) और 'बिटर हारवेस्ट' (1975) में इस गैर-बराबरी का विश्लेषण किया गया है और उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

एक तरफ अनौपचारिक क्षेत्र में देश की 80 फीसदी आबादी है, जिनको औसत आमदनी का मात्र तीसरा हिस्सा ही मयस्सर है तो दूसरी तरफ देश की धनी 20 फीसदी आबादी है, जिनको औसत आमदनी का तीन गुना से भी ज्यादा मिलता है।

गैर-बराबरी का सिलसिला इससे भी आगे है। गैर-कृषि क्षेत्र का अंदाजन 60 फीसदी हिस्सा अर्थात देश की आबादी का 30 फीसदी हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्र (इन्फारमल सेक्टर) में है। कृषि क्षेत्र की 50 फीसदी और गैर-कृषि क्षेत्र की 30 फीसदी आबादी (इसमें शहरी आबादी 15 से 20 फीसदी के बीच और ग्रामीण आबादी 10 से 15 फीसदी के बीच है) को मिलाकर देश की 80 फीसदी आबादी को अनौपचारिक क्षेत्र में गिना जाता है। महामंदी का सर्वाधिक असर गैर-कृषि अनौपचारिक क्षेत्र के इन्हीं 30 फीसदी लोगों पर पड़ा है।

अनौपचारिक क्षेत्र का अवलोकन : अनौपचारिक क्षेत्र में देश की अंदाजन 80 फीसदी आबादी है। इनकी आमदनी का स्तर क्या है, इसकी प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। दरअसल अनौपचारिक क्षेत्र को परिभाषित तो 1970 के दशक में ही कर दिया गया था और इस पर काफी शोध भी हुआ है। असंगठित और गैर-

पंजीकृत (एस्टिब्लेसमेंट ऐक्ट के संदर्भ में) क्षेत्र में कार्यरत आबादी को इसमें गिना जाता है। गैर-पंजीकृत इकाइयों के कर्मचारी, दिहाड़ी श्रमिक, छिटपुट काम करने वाले, घरों में पूर्णकालिक या अल्पकालिक तरीके से काम करने वाले, फेरी वाले, ठेले वाले, रिक्शा चालक, स्व-रोजगारी कारोबारी (जैसे कि सब्जी विक्रेता) आदि को इसमें गिना जाता है। इसमें ऐसे कारोबार गिने जाते हैं, जिनके लिए बहुत कम पूंजी चाहिए और इसे शुरू करने में कोई रोक-टोक नहीं हो। इनमें स्वयं और परिवार के सदस्य ही काम करते हैं। गैर-पंजीकृत होने से इस क्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था नहीं है, यहां तक कि इस क्षेत्र में नियोक्ता और कर्मचारी के मध्य कोई लिखित अनुबंध भी नहीं किया जाता है। इस कारण इस क्षेत्र में न्यूनतम श्रमिकी संबंधी कानून लागू नहीं हो पाते हैं। कर्मचारी राज्य बीमा और कर्मचारी भविष्य निधि की सुविधा भी नहीं मिलती है।

अनौपचारिक क्षेत्र को लेकर आधिकारिक तौर पर देशव्यापी स्तर पर किसी प्रकार के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। यहां तक कि इस क्षेत्र की कुल आबादी के आंकड़े भी उपलब्ध नहीं हैं। 2008 में पारित असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा ऐक्ट के अंतर्गत असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को पंजीकृत करके उन्हें स्मार्ट कार्ड मुहैया कराने का प्रावधान है। इन कार्डों से अनौपचारिक क्षेत्र के बारे में प्रामाणिक जानकारी मिल सकती थी, पर बारह वर्ष बीत जाने के बाद भी इस कानून को अमल में नहीं लाया गया है। वैसे देशव्यापी स्तर पर अनौपचारिक क्षेत्र की समुचित जानकारी जुटाना सरकार के लिए कोई दुष्कर कार्य नहीं है। डिजिटल हेल्थ कार्ड की तर्ज पर डिजिटल रोजगार कार्ड भी बनाया जा सकता है।

अनौपचारिक क्षेत्र पर निर्भर आबादी के बारे में कई अनुमान लगाए गए हैं, जो कि देश की आबादी के 75 से 92 फीसदी के बीच हैं। इन अनुमानों के विभिन्न पहलुओं की समीक्षा करने पर 80 फीसदी (60 फीसदी ग्रामीण और 20 फीसदी शहरी) का अनुमान तर्कसंगत जान पड़ता है।

अनौपचारिक क्षेत्र के लिए आय की बाबत भी देशव्यापी स्तर पर जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस संदर्भ में 2015-16 में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा अनिगमित गैर-कृषि क्षेत्र के उद्यमों के सर्वेक्षण का उल्लेख किया जा सकता है। इसके अनुसार इन उद्यमों में कार्यरत श्रमिकों की औसत सालाना तनख्वाह 87,544 रुपये थी। उसी वर्ष देश की प्रति व्यक्ति आमदनी 94,797 रुपये थी। श्रमिक परिवारों के सदस्यों की औसत संख्या तीन मानते हुए इन श्रमिक परिवारों की प्रति व्यक्ति आमदनी 29,181 रुपये के बराबर आती है और यह रकम देश की प्रति व्यक्ति आमदनी के तीसरे हिस्से से भी कम है।

सरकार के दावों के बावजूद बहुत से जरूरतमंदों, खासकर प्रवासी श्रमिकों को मुफ्त अनाज नहीं मिल रहा है। 8 करोड़ प्रवासी श्रमिकों में से 2 करोड़ 51 लाख को ही मुफ्त अनाज मुहैया कराया जा रहा है।

नियमित रोजगार के कारण उपरोक्त श्रमिक अनौपचारिक क्षेत्र के बहुतेरे अन्य श्रमिकों से बेहतर स्थिति में हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में ज्यादातर अकुशल श्रमिक हैं। इनमें कुछ ही राज मिस्त्री, पलम्बर, इलेक्ट्रिशियन जैसे कौशल वाले काम करने के काबिल हैं। अकुशल श्रमिकों में से कुछ तो नियमित रोजगार पाने में कामयाब हो जाते हैं, बाकी लोग दिहाड़ी काम या छिटपुट कामों से गुजर-बसर करते हैं। एक ही औद्योगिक अथवा व्यापारिक इकाई में लगातार कई वर्ष कार्यरत रहने से अनुभवजन्य प्रशिक्षण के कारण इन कर्मचारियों की उत्पादकता और आमदनी बाकी श्रमिकों के मुकाबले ज्यादा ही होती है।

इस तरह अनौपचारिक क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आमदनी 2015-16 में 29,181 रुपये से कम ही थी, अर्थात उनकी औसत आमदनी देश की औसत आमदनी के तीसरे हिस्से से भी कम है।

इस तरह देश की 80 फीसदी आबादी का देश की राष्ट्रीय आय में हिस्सा तकरीबन 27 फीसदी (कृषि क्षेत्र का 17 फीसदी और गैर-कृषि क्षेत्र का 10 फीसदी) या इससे भी कम है। सबसे धनी 20 फीसदी आबादी की देश की कुल आमदनी में हिस्सेदारी 70 फीसदी से भी ज्यादा है। जाहिर है कि भारत में आय के वितरण की गैरबराबरी चरम स्तर तक पहुंच चुकी है और देश में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया एक चिंताजनक शक्ल ले चुकी है। एक तरफ अनौपचारिक क्षेत्र में देश की 80 फीसदी आबादी है, जिनको औसत आमदनी का मात्र तीसरा हिस्सा ही मयस्सर है तो दूसरी तरफ देश की धनी 20 फीसदी आबादी है, जिनको औसत आमदनी का तीन गुना से भी ज्यादा मिलता है। इन धनी 20 फीसदी की औसत आमदनी देश की बाकी 80 फीसदी की औसत आमदनी का दस गुना है।

मौजूदा महामंदी का सबसे ज्यादा असर शहरी अनौपचारिक क्षेत्र पर पड़ा है। इस वक्त बहुत लोगों के काम-धंधे बंद हैं और बहुत का रोजगार छिन गया है। ये लोग सामाजिक सुरक्षा से वंचित हैं और इनमें ज्यादा के पास न तो संसाधन है ना ही अचल (जमीन-जायदाद आदि) और चल (बचत आदि) परिसंपत्तियां हैं। सरकार के दावों के बावजूद बहुत से जरूरतमंदों, खासकर प्रवासी श्रमिकों को मुफ्त अनाज नहीं मिल रहा है। 8 करोड़ प्रवासी श्रमिकों में से 2 करोड़ 51 लाख को ही मुफ्त अनाज मुहैया कराया जा रहा है। अन्य बुनियादी जरूरतों के मामले में सरकारी सहायता का इंतजाम नहीं है। परिणामस्वरूप इस वक्त शहरी अनौपचारिक क्षेत्र की आबादी का बड़ा हिस्सा गहरे संकट में है। उनमें एक बड़ा हिस्सा कर्ज की दलदल में फंसता जा रहा है, जिसका मतलब दीर्घकालिक गरीबी है। बहुत से परिवार तो

कई तरह की बुनियादी जरूरतों से महरूम हैं, क्योंकि उन्हें उधार भी नहीं मिल पा रहा है। इस वंचित तबके की जरूरतों पर तवज्जो क्यों नहीं दी जा रही है, यह सवाल बहुत हैरान और परेशान करने वाला है।

सरप्लस दूध से संचित खाद्य पदार्थ बन सकता था : महामंदी का असर गैर-कृषि ग्रामीण काम-धंधों पर भी पड़ा है। देश के करोड़ों ग्रामीण परिवार अपनी जीविका के लिए दूध उत्पादन पर निर्भर हैं। इनमें मुख्यतः भूमिहीन, सीमांत और लघु किसान हैं। वैसे महामारी का दूध उत्पादन पर खास असर नहीं पड़ा है। पर इसकी खपत में काफी कमी आई है। होटलों, रेस्तरांओं, हलवाई की दुकानों, सामाजिक समारोहों- जैसे थोक उपभोक्ताओं की मांग, में भारी गिरावट आई है। दूध की आपूर्ति ज्यादातर डेयरियों के माध्यम से होती है। महामंदी के शुरुआती दिनों में कई डेयरियों ने दूध के अधिशेष (सरप्लस) को खरीद कर उसे सूखा दूध पाउडर, घी, मक्खन जैसे संचित करने योग्य उत्पादों में परिवर्तित करने की प्रक्रिया शुरू की थी। पर इन वस्तुओं के अनबिके स्टाक में अत्याधिक वृद्धि हो जाने पर उन्होंने अतिरिक्त खरीद की प्रक्रिया ही बंद कर दी। अनबिके दूध के कारण दामों में 15 से 30 फीसदी की गिरावट से स्थिति काफी चिंताजनक हो गई है। सरकारी समर्थन से इस मसले को हल किया जा सकता था। सरकार समुचित पैमाने पर सूखा दूध पाउडर खरीद सकती है, जिसे महामारी के खत्म होने पर स्कूलों में मध्याह्न भोजन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था। सहकारी क्षेत्र में कार्यरत संगठनों ने यह सुझाव दिया है, पर इस मामले में भी सरकारी रुख हैरान और परेशान करने वाला है।

गैर-पंजीकृत इकाइयों के कर्मचारी, दिहाड़ी श्रमिक, छिटपुट काम करने वाले, घरों में पूर्णकालिक या अल्पकालिक तरीके से काम करने वाले, फेरी वाले, ठेले वाले, रिक्शा चालक, स्व-रोजगारी कारोबारी (जैसे कि सब्जी विक्रेता) आदि को इसमें गिना जाता है।

हथकरघा उद्योग संकट में, सेवा क्षेत्र भी प्रभावित : कुटीर उद्योगों पर भी महामंदी का बहुत ज्यादा असर पड़ा है। 32 लाख हथकरघा कारीगरों की हालत भी काफी तकलीफदेह है। इनमें बहुत तो कर्ज लेने को मजबूर हैं। सेवाओं के क्षेत्र पर भी महामंदी का असर पड़ा है। कई निजी स्कूलों के अध्यापकों को पिछले तीन-चार माह से वेतन नहीं मिला है। ये स्कूल स्व-वित्त पोषित हैं और इनको इस दौरान फीस की अदायगी नहीं हुई है। कई स्कूल तो किराया आदि भी नहीं दे पा रहे हैं। इन स्कूलों में ज्यादातर छात्र निम्न-मध्यम वर्ग के हैं। ऐसे स्कूलों की तादाद काफी है।

मध्यम, लघु, सूक्ष्म उद्यमों पर भी बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अनुमान है कि 40 फीसदी बड़ी औद्योगिक इकाइयां महामंदी से बहुत ज्यादा प्रभावित हैं। कारोबार बंद होने पर भी कई तरह के स्थिर खर्चे कारोबारियों को वहन करने पड़ते हैं। जैसे- किराया, ब्याज, लाइसेंस फीस आदि। महामंदी का होटल, रेस्तरां, एयरलाइंस, बस-टैक्सी ऑपरेटर, ट्रांसपोर्टर आदि पर बहुत ज्यादा असर हुआ है और इस कारण कई इकाइयों के बंद होने का खतरा भी मंडरा रहा है। निजी क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में स्टाफ को हटाया गया है। बहुत लोग मकानों, मोटर वाहन आदि के कर्ज की किस्तों के भुगतान करने की स्थिति में नहीं हैं।

31 अगस्त को किस्त भुगतान में स्थगन (मॉरेटोरियम) की अवधि खत्म हो रही है और अगर इसे आगे नहीं बढ़ाया जाता है तो ट्रांसपोर्टर तकरीबन 45,000 से 50,000 ट्रकों को फाइनेंसरों को वापस कर सकते हैं। कारोबारी, वेतनभोगी, व्यवसायी आदि सभी क्षेत्र महामारी से त्रस्त हैं। महामारी-जन्य जोखिमों से कैसे निबटा जा सकता है, इनकी लागतों को कौन और कैसे वहन करेगा? इन नीतिगत सवालों पर स्पष्ट नीति अपनाकर उसे शीघ्र अमल में लाना निहायत जरूरी है।

आर्थिक पैकेज : 25 मार्च को

अचानक देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की गई और 26 मार्च को 1 लाख 70 हजार करोड़ रुपये के पैकेज की 'प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना' की घोषणा की गई थी। इसके अंतर्गत मनरेगा की मजदूरी दर 182 रुपये से बढ़ाकर 202 रुपये की गई है। सभी छोटे किसानों को 2000 रुपये दिए जाने की व्यवस्था की गई है। जन-धन योजना के अंतर्गत खाताधारी महिलाओं को तीन माह के लिए 500 रुपये प्रति माह, गरीब, विधवा, दिव्यांग और बुजुर्गों को एकमुश्त 1000 रुपये देने की व्यवस्था की गई है। मुफ्त गैस सिलेंडर दिलाने वाली उज्ज्वला योजना को भी इसी पैकेज में गिना गया है।

12 मई से 18 मई के दौरान पांच अंशों में वित्तमंत्री ने उपरोक्त 1.70 लाख करोड़ रुपये के पैकेज सहित 20.97 लाख करोड़ रुपये के एक विस्तृत पैकेज की घोषणा की। संक्षेप में इसका ब्योरा इस तरह है। पहला अंश 5.94 लाख करोड़ रुपये का है और यह अंश नकदी की कमी से जूझते सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों पर केंद्रित है। इसमें इन उद्योगों की 45 लाख इकाइयों को बैंकों के जरिए 3 लाख करोड़ रुपये के गिरवी-मुक्त (कलेटरल फ्री) ऋण सहित अन्य कई प्रकार के ऋणों का खुलासा किया गया है।

सामयिक वार्ता अब
www.lohiatoday.com
पर भी पढ़ सकते हैं।

दूसरा अंश किसानों, श्रमिकों और अनौपचारिक क्षेत्र की जरूरतों पर केंद्रित है। यह अंश 3 लाख 10 हजार करोड़ के बराबर है और यह मुख्यतः इस प्रकार आवंटित है। किसान क्रेडिट कार्ड के जरिए ढाई करोड़ किसानों को 2 लाख करोड़ का रियायती उधार, नाबार्ड के कार्यशील पूंजी कोष में 30,000 करोड़ रुपये का इजाफा, ताकि 3 करोड़ किसानों के लिए ज्यादा उधार की व्यवस्था की जा सके। ढाई लाख परिवारों द्वारा रियायती मकानों के लिए उधार पर ब्याज सब्सिडी के लिए 7000 करोड़ रुपये, प्रवासी श्रमिकों के लिए मुफ्त अनाज के लिए 3500 करोड़ रुपये, 50 लाख फेरीवालों में से प्रत्येक को कार्यशील पूंजी के दस हजार रुपये की उधार राशि के लिए 5000 करोड़ के बराबर विशेष उधार सुविधा का प्रावधान।

तीसरा अंश 1.50 लाख करोड़ रुपये का है, जिसके अंतर्गत कृषि इंफ्रास्ट्रक्चर कोष के लिए 1 लाख करोड़ रुपये, प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना के लिए 20 हजार करोड़ रुपये, पशुपालन इंफ्रास्ट्रक्चर विकास कोष के लिए 15 हजार करोड़ रुपये का प्रावधान है।

चौथा और पांचवां अंश मुख्यतः पुराने फैसलों और पुराने सुधारों को नई दिशा देने पर केंद्रित है। इन दोनों अंशों में कुल मिलाकर 48,100 करोड़ रुपये का प्रावधान है, जिनमें मुख्यतः मनरेगा रोजगार योजना के लिए 40,000 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि आबंटित की गई है।

उपरोक्त पांच अंशों के अलावा गरीब कल्याण योजना और 12 मई से पहले राहत पर किए गए अन्य व्यय को भी पैकेज में जोड़ा गया है। इसके साथ रिजर्व

कारोबार बंद होने पर भी कई तरह के स्थिर खर्चे कारोबारियों को वहन करने पड़ते हैं। जैसे- किराया, ब्याज, लाइसेंस फीस आदि। महामंदी का होटल, रेस्तरां, एयरलाइंस, बस-टैक्सी ऑपरेटर, ट्रांसपोर्टर आदि पर बहुत ज्यादा असर हुआ है।

बैंक द्वारा उठाए गए कदमों के कारण आठ लाख करोड़ के बराबर उपलब्ध कराई गई अतिरिक्त तरलता (लिक्विडिटी) को भी इस पैकेज में जोड़ा गया है। इस तरह कुल मिलाकर, यह पैकेज 20.97 लाख करोड़ रुपये का है, जो कि राष्ट्रीय आय के तकरीबन 10 फीसदी के बराबर है। काफी दिनों से (साढ़े पांच माह से) देश में महामंदी का दौर चल रहा है और इस कारण यह सवाल पैदा होता है कि क्या यह पैकेज देश की जरूरतों की कसौटी पर खरा उतरा है?

पैकेज कितना कारगर है? : उपरोक्त पैकेज के तीन हिस्से हैं। 1. राजकोषीय (फिसकल) पैकेज, 2. बैंकों और गैर बैंकिंग वित्त निगम (एनबीएफसी) द्वारा

प्रदत्त ऋण, 3. रिजर्व बैंक का तरलता (लिक्विडिटी) पैकेज।

कुल पैकेज 20.97 लाख करोड़ रुपये का है और यह अगस्त माह तक के लिए था। जबकि राहत पर राजकोषीय व्यय की कुल राशि तकरीबन 3.14 लाख करोड़ रुपये आबंटित की गई है और इसमें नवंबर तक का अनुमानित व्यय भी जोड़ा गया है। इस का ब्योरा इस तरह है।

– गरीब कल्याण योजना के अंतर्गत देश के 80 करोड़ से अधिक गरीब परिवारों को नवंबर तक 5 किलो गेहूं या 5 किलो चावल मुफ्त मुहैया कराया जाएगा और इसके साथ हर महीने 1 किलो दाल या चना भी। इसके तहत अप्रैल में 93% , मई में 91% और जून में 71% को अनाज दिया जा चुका है। इस योजना पर नवंबर तक का बजट 1.5 लाख करोड़ रुपये है।

– 25.62 करोड़ जन-धन खाताधारक स्त्रियों की दो महीने की सहायता राशि पर 12,810 करोड़ रुपये खर्च आए थे। यानी इस मद का नवंबर तक का बजट 44,835 करोड़ रुपये है।

– 2.82 करोड़ वृद्धों, विधवाओं और दिव्यांगजनों पर दो महीने तक की सहायता राशि पर 1405 करोड़ रुपये खर्च हुए थे। यानी इसका नवंबर तक का बजट 4918 करोड़ रुपये है।

–उज्ज्वला योजना के अंतर्गत दो महीनों में 4.82 करोड़ गैस सिलेंडर बांटे गए थे। यानी नवंबर तक का 12.05 करोड़ गैस सिलेंडर बांटे जाने हैं। तीन महीनों का बजट 13,500 करोड़ रुपये था यानी इसका नवंबर तक का बजट 31,500 करोड़ रुपये है।

– निर्माण श्रमिकों के लिए 31,000 करोड़ रुपये की राशि है।

– मनरेगा के अंतर्गत रोजगार पर 40,000 करोड़ का अतिरिक्त आवंटन भी किया गया है।

– इन सबका जोड़ तकरीबन 3.14 लाख करोड़ रुपये है, जो कि राष्ट्रीय आय के डेढ़ फीसदी के लगभग है और यह राशि जरूरत से बहुत कम है। इस असलियत से नीतिकार अनजान नहीं हैं। मौजूदा हालात का जायजा लेते हुए रिजर्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार, हालात सुधारने और महामारी का मुकाबला करने में सरकारी व्यय में भारी इजाफा हो चुका है। इससे समग्र मांग बढ़ाने के लिए सरकारी व्यय में और इजाफा करने की गुजाइंश नहीं है। दूसरे शब्दों में सरकार के पास महामारी को गरीबों की बहुत सी बुनियादी जरूरतों का इंतजाम करने के लिए संसाधन नहीं हैं। पर यह तर्क सही स्थिति व्यक्त नहीं करता है। संसाधन जुटाए जा सकते हैं। पर यह रास्ता नवउदारवाद के विपरीत है। इस विषय पर इस लेख के अगले हिस्से में तफसील से चर्चा की जाएगी।

महामंदी का असर सेवा पर भी है। कई निजी स्कूलों के अध्यापकों को पिछले तीन-चार माह से वेतन नहीं मिला है। ये स्कूल स्व-वित्त पोषित हैं और इनको इस दौरान फीस की अदायगी नहीं हुई है। कई स्कूल तो किराया आदि भी नहीं दे पा रहे हैं।

सप्लाई स्टिम्युलस (आपूर्ति प्रोत्साहन) कारगर नहीं है : गौरतलब है कि राजकोषीय पैकेज को सबसे कम अहमियत दी गई थी। रोजगार और उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए नीतिकारों ने मौद्रिक नीति को चुना था। इसके पैराकारों की दलील इस तरह है – बैंक ऋण और रिजर्व बैंक के द्वारा उपलब्ध कराई गई अतिरिक्त तरलता (लिक्विडिटी) से साख प्रोत्साहन (क्रेडिट स्टिम्युलस) की प्रक्रिया मजबूत होगी। इससे बड़ी मात्रा में वित्तीय पूंजी का सर्जन होगा, जिससे निजी क्षेत्र के उद्यमों द्वारा भारी मात्रा में निवेश होगा। इस प्रक्रिया से आपूर्ति प्रोत्साहन के माध्यम से रोजगार और उत्पादन में बढ़ोतरी का दावा इस नीति में निहित था। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

कार्यशील पूंजी के लिए तरलता जरूरतों के अनुसार बैंक ऋणों में इजाफा हुआ है। पर उद्यमियों ने मौजूदा हालात में नए निवेश के लिए ऋणों को लेने से पूरी तरह गुरेज किया है। इसके विपरीत कई कंपनियां बैंक ऋणों के बोझ को कम करने के लिए भी राइट्स इश्यू पेश कर इक्विटी निवेश में इजाफा कर रही हैं। इससे बैंक ऋणों की मांग में बहुत कमी आई है।

महामारी से अनिश्चितता का माहौल पनप रहा है और इस कारण असुरक्षा का भाव बढ़ रहा है। इसका एक परिणाम यह है कि अर्थव्यवस्था में नकदी का परिसंचरण (सर्क्यूलेशन) बढ़कर एक रिकॉर्ड स्तर पर आ गया है। इसका बैंकों द्वारा जमा खातों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। पर इस असामान्य माहौल में यह बैंकों के लिए एक राहत की ही बात है। क्योंकि बैंक जमा खातों पर 4 से 6 फीसदी ब्याज देते हैं और उन्होंने इन दिनों लाखों करोड़ रुपयों की अप्रयुक्त रकम मात्र 3.35 फीसदी ब्याज दर पर रिजर्व बैंक के पास जमा करा रखी है। आम हालात में बैंक जमा खातों पर कमाई करते हैं और आज की परिस्थिति में वे नए जमा खातों की लागत की भरपाई भी नहीं कर पा रहे हैं।

उधार के मामले में विश्वसनीयता के पात्र सुस्थापित कारोबारी बैंक ऋणों में इजाफा करने में अनिच्छुक है। दूसरी ओर इस अनिश्चितता के माहौल में बैंक नए आसामियों के उधार देने का जोखिम लेने से कतरा रहे हैं। विवेक और सावधानी के आधार पर यही वक्त का तकाजा भी है। आज बहुत बड़ी संख्या में कारोबार बंद हैं और अनिश्चितता का माहौल है। सवाल तो सीधा और स्पष्ट हैः इन परिस्थितियों में आपूर्ति प्रोत्साहन कैसे पनप सकता था?

जरूरत डिमांड स्टिम्युलस की है : महामंदी के शुरुआती दौर में ही कई विशेषज्ञों ने व्यापक राजकोषीय पैकेज के पक्ष में अपनी राय दी है। क्योंकि परिस्थितियां स्पष्टतः तरलता जाल (लिक्विडिटी ट्रैप) के अनुरूप है। इसके लिए मांग प्रोत्साहन (डिमांड स्टिम्युलस)

की जरूरत हैं और यह जरूरत एक राजकोषीय (फिसकल) पैकेज से ही पूरी की जा सकती है। रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के मुताबिक, देश में आर्थिक गतिविधियों में अभूतपूर्व कमी आई है और खपत को तगड़ा झटका लगा है। इसके लिए बड़े राजकोषीय पैकेज की जरूरत तो है पर सरकारी खर्चे बढ़ाने की गुजाइंश नहीं है।

मौजूदा हालात में सरकारी राजस्व की स्थिति काफी पतली है। सरकारी राजस्व कम है और सरकारी व्यय ज्यादा है तो बजटीय घाटे की स्थिति का सामना करना पड़ता है। बजटीय घाटा असामान्य नहीं है पर सवाल बजटीय घाटे को सीमाबद्ध करने से जुड़ा है। कायदे-कानून का हवाला दिया जा रहा है। 2003 में 'फिसकल रिस्पांसबिलिटी एंड बजट मैनेजमेंट ऐक्ट' पारित किया गया था। गौरतलब कि इस ऐक्ट की इन अपेक्षाओं को आज तक अमल में नहीं लाया गया हैः 31 मार्च, 2008 तक राजस्व खाते के घाटे को खत्म करना होगा, जो कि आज तक नहीं हुए है। यानी बजटीय घाटे का इस्तेमाल पूंजीगत परिसंपत्तियों के सर्जन के लिए ही होना चाहिए। पर ऐसा नहीं हो रहा है। ऐक्ट की अपेक्षा की परवाह न करते हुए इन 17 वर्षों में सरकार के प्रशासनिक खर्चों की बढ़ोतरी पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं लगाया गया है। पर गरीब आवाम के लिए संसाधन जुटाने में कायदे-कानून की आड़ ली जा रही है।

मुद्रास्फीति का जवाब आय-नीति है : सरकारी राजस्व का बड़ा हिस्सा करों से प्राप्त राजस्व पर आधारित है। भारत में अन्य देशों के मुकाबले करों का बोझ अमीरों पर कम और गरीबों पर ज्यादा है। भारत में सेवा एवं वस्तु करों (जीएसटी) की दरें 28 फीसदी तक है, जबकि बहुत से देशों में 15 फीसदी से कम है। दूसरी ओर भारत में आयकर की अधिकतम दर 30 फीसदी है और कई अन्य देशों में 50 फीसदी से ज्यादा है। यही नहीं, संपत्ति-कर को 2014 में हटा दिया गया था और एस्टेट शुल्क (उत्तराधिकार कर) को 1986 में हटा दिया गया था। जाहिर है कि आयकर की उच्चतम दर में बढ़ोतरी की जा सकती है। संपत्ति कर और एस्टेट शुल्क को उगाहा जा सकता है। इन नीतिगत परिवर्तनों से सरकारी राजस्व में आवश्यकता के अनुसार इजाफा किया जा सकता है।

भारत में 1990 के पूर्व आयकर की अधिकतम दर 50 फीसदी से ज्यादा थी पर विवादास्पद लैफर वक्र पर आधारित दलील देकर इन्हें तेजी से घटाया जाता रहा है। लैफर वक्र के मुताबिक दर घटाने से राजस्व बढ़ता है। इसके पक्ष में अनुभवजन्य (इम्पिरिकल) साक्ष्य नहीं है। भारत में आयकर की दर घटाने से राजस्व घटा ही है जिसकी कमी को वस्तु करों को बढ़ाकर पूरा करने की असफल चेष्टा की जाती रही है। राजस्व की कमी के परिणामस्वरूप शिक्षा और चिकित्सा का निजीकरण करके सरकारी व्यय को घटाया गया है।

कारोबारी, वेतनभोगी, व्यवसायी आदि सभी क्षेत्र महामारी से त्रस्त हैं। महामारी-जन्य जोखिमों से कैसे निबटा जा सकता है, इनकी लागतों को कौन और कैसे वहन करेगा? इन नीतिगत सवालों पर स्पष्ट नीति अपनाकर उसे शीघ्र अमल में लाना जरूरी है।

वैसे महामारी के पूर्व ही देश की अर्थव्यवस्था सिकुड़ रही थी और इसका कारण गैर-बराबर सवृद्धि है। महामारी से समस्या अति विषम हो गई है और इन दोनों समस्याओं का समाधान कल्याणकारी गतिविधियों के विस्तार में ही निहित है। मांग प्रोत्साहन के लिए सरकारी खर्चों को तुरंत बढ़ाना आवश्यक है। चाहे कि इसके लिए बजटीय घाटे का मुद्रीकरण किया जाए या सार्वजनिक ऋण लिया जाए। बैंक ऋणों की मांग इस वक्त संकुचित है और इसलिए सार्वजनिक ऋण जुटाना मुश्किल नहीं होना चाहिए। प्रत्यक्ष करों (आयकर आदि) में बढ़ोतरी करके अगले कुछ वर्षों में ही सार्वजनिक ऋण कम किए जा सकते हैं।

बजटीय घाटे में बढ़ोतरी से दामों में उछाल अर्थात मुद्रास्फीति की समस्या आ सकती है। पर इस समस्या को काफी हद तक आय-नीति से निबटा जा सकता है। वक्त का तकाजा आय-नीति है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस नीति का प्रमुख माध्यम नकद राशि या जिंस के जरिए जरूरतमंदों को आय का स्थानांतरण है। जनसाधारण के पास क्रयशक्ति से मांग का तेजी से सृजन होने से रोजगार और उत्पादन में तेजी आएगी और महामंदी के दौर से देश को निजात मिलेगी। पिछले साल की आर्थिक सुस्ती (स्लोडाउन) और मौजूदा महामारी के दौरान असफलताओं का कारण नवउदारवादी नीतियां हैं। कल्याणकारी नीतियों से ही देश बराबरी और समृद्धि की दिशा में बढ़ सकता है। इन्हीं नीतियों से मौजूदा परिस्थितियों में देश को गरीबी के सैलाब से निजात दिलाई जा सकती है।

आखिर सरकार कतरा क्यों रही है? : आखिर में यह सवाल उठता है कि सरकार फिस्कल स्टिम्युलस (राजकोषीय प्रोत्साहन) से कतरा क्यों रही है? अन्य देशों के मुकाबले भारत इस मामले में अपवाद क्यों है? सरकार गरीबों और जरूरतमंदों की खुले हाथों से मदद क्यों नहीं कर रही है? यह दलील खोखली है कि सरकार संसाधन नहीं जुटा सकती है, क्योंकि राजकोषीय स्थिति काफी कमजोर है। भारत का सार्वजनिक ऋण राष्ट्रीय आय के 70 फीसदी है और शासकीय प्रतिभूतियों पर 6 फीसदी ब्याज है। इस तरह बजट पर इसका सालाना बोझ राष्ट्रीय आय के 4 फीसदी से ज्यादा है। कई देशों में यह 100 फीसदी से ज्यादा है पर ब्याज की दर 2 फीसदी से भी कम है। भारत में तो शासकीय प्रतिभूतियों का बाजार पूरी तरह सरकारी नियंत्रण में है। अतः यह बोझ घटाया जा सकता है। इस आपदा के वक्त भी सरकार सशक्त कदम उठाने से कतरा क्यों रही है? ■

कॉरपोरेट खेती के लिए बदले जा रहे कानून

विवेकानंद माथने

भारत सहित पूरी दुनिया की लूट करने के लिए कॉरपोरेट कंपनियां खेती, उद्योग और व्यापार पर कब्जा करना चाहती है। भारत में इन कंपनियों ने योजनाबद्ध तरीके से ग्रामोद्योग को खत्म किया। जल, जमीन, खनिज पर मालिकाना हक प्राप्त किया। अब वह खेती और व्यापार पर कब्जा करना चाहती है। भारत सरकार द्वारा जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि प्राकृतिक संसाधनों पर कॉरपोरेट को मालिकाना हक देने के लिए नीति और कानूनों में बदलाव की प्रक्रिया जारी है। बैंक, बीमा कंपनियां, रेल और सभी सार्वजनिक क्षेत्रों को देशी-विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले किया जा रहा है। अब सरकार खेती और व्यापार को कॉरपोरेट को सौंपने के लिए नीतियों और कानूनों में बदलाव कर रही है।

प्राकृतिक खेती को रासायनिक खेती, थाली में जहर, बीजों की स्वाधीनता, फसलों की जैव विविधता नष्ट कर एक फसली खेती में बदलने के लिए अगर कोई एक व्यक्ति सबसे अधिक जिम्मेदार है तो वह एम. एस. स्वामीनाथन जी है।

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए किसानों की संख्या आधी करना और धीरे-धीरे खेती में केवल 20 प्रतिशत किसान रखकर बाकी किसानों को खेती से बाहर करना केंद्र सरकार और नीति आयोग की घोषित नीति है। यह 20 प्रतिशत किसान कॉरपोरेट किसान होंगे, जो कंपनी खेती या करार खेती के माध्यम से खेती करेंगे। सरकार मानती है कि छोटे जोत रखने वाले किसान पूंजी, तंत्रज्ञान के अभाव के कारण अधिक उत्पादन की चुनौती को स्वीकार नहीं कर पाते इसलिए उन्हें खेती से हटाना जरूरी है।

दुनिया के कौन से देश में कौन से उत्पादन की कितनी जरूरत है, इसका अध्ययन कर डेटा इकट्ठा किया जाएगा और कॉरपोरेट खेती या करार खेती द्वारा दुनिया के बाजार के लिए अधिक मुनाफा देने वाली फसल पैदा की जाएगी। कंपनियों द्वारा गुणवत्ता मानक के आधार पर किसानों से ऑनलाइन फसलें खरीदी जाएगी। स्थानीय गोदामों में ही भंडारण किया जाएगा। साथ ही कृषि प्रक्रिया उद्योगों में तैयार उत्पाद बनाए जाएंगे। खरीद और बिक्री के लिए सप्लाई चेन का नेटवर्क बनाकर कच्चा माल और प्रक्रिया उत्पाद दुनिया के बाजारों में मुनाफे की संभावना देखकर बेचे जाएंगे। यह कंपनियां आयात-निर्यात के माध्यम से फसलों के दाम बढ़ाने-घटाने का काम करेगी।

इसे एक उदाहरण से समझते है। किसानों की प्रोड्यूसर कंपनियां बनाने का काम तो पहले से चल रहा है। कंपनी करार खेती द्वारा किसी उत्पादक किसान के समूह के साथ एक करार करके आलू की पैदावार सुनिश्चित करेगी। सभी इनपुट, तकनीकी और यांत्रिकी उपलब्ध कराएगी। उत्पादन की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए किस कंपनी से कौन सा बीज, खाद, कीटनाशक का इस्तेमाल करना है यह सब कंपनियां तय करेंगी। गुणवत्ता के मानक पूरे करने पर ही आलू तय कीमत पर खरीदा जाएगा। किसान अगर प्रशिक्षित है तो खेती में मजदूरी कर सकेगा। यह गुणवत्ता पूर्ण आलू या फिर आलू चिप्स या अन्य प्रक्रिया उत्पाद घरेलू या विदेशी बाजार में जहां अधिक मुनाफा मिलेगा वहां बेचा जाएगा।

मान लीजिए भारत में प्याज की पैदावार अच्छी हुई है। किसानों को बाजार में अच्छे दाम मिल रहे है। तब यह कंपनियां विदेशों से प्याज आयात करके बाजार में उतारेगी और प्याज की कीमतें गिरा देगी। फिर गिरी कीमतों में बड़े पैमाने में प्याज खरीद कर पीपीपी में बनाए गए गोदामों में जीवनावश्यक वस्तु अधिनियम से हटने के कारण चाहे जितना भंडारण कर लेगी और दुनिया के बाजार में जहां जब अधिक मुनाफा मिलेगा वहां बेचेगी। यह तो आज भी होता है लेकिन अब उसे कानून बनाकर एक व्यवस्था का रूप दिया जा रहा है।

किसानों के लिए तो आज की व्यवस्था भी लूट की व्यवस्था है। जिसने किसानों को बदहाल करके रखा है। लेकिन अब इस लूट व्यवस्था को वैश्विक लूट व्यवस्था में बदलने और कानूनी दायरे में लाने के लिए बदलाव किए जा रहे है। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए केंद्र सरकार ने करार खेती कानून, जीवनावश्यक वस्तु अधिनियम, कृषि उपज वाणिज्य एवं बाजार अध्यादेश बनाए गए है।

कृषि के लिए बिजली की सब्सिडी खत्म करना, सिंचाई के लिए मीटर से नापकर पानी

की बिक्री, पेट्रोलियम पर सब्सिडी खत्म करना, खेती में पूंजी निवेश की अनुमति देना, इजरायल और दूसरे देशों से कृषि तकनीकी प्राप्त करना, करार खेती कानून, खेती जमीन की अधिकतम सीमा निर्धारित करने वाला सीलिंग कानून हटाने की कोशिश, पीपीपी के तहत गोदामों का निर्माण, कृषि उत्पादों के भंडारण की मर्यादा हटाना, कृषि बाजार समिति का अस्तित्व समाप्त करने के लिए एक देश एक बाजार कानून, कृषि उपज खरीद और प्रक्रिया के लिए प्रोड्यूसर कंपनी कानून, किसानों से सीधे ऑनलाइन खरीद के लिए ई-नाम कानून आदि में कॉरपोरेट खेती को लाभ पहुंचाने के लिए नीति और कानून में बदलाव की प्रक्रिया जारी है।

कंपनियों ने अपने उत्पाद बेचने के लिए व्यवस्था स्थापित कर ली है। कंपनी से ग्राहकों तक सप्लाई चेन, ई- बाजार, ई- कॉमर्स, ई- मार्केटिंग आदि के द्वारा उत्पाद पहुंचाया जाएगा। मॉल्स, शॉपिंग सेंटर, रिटेल दुकानें आदि में कंपनियां लगातार विस्तार कर रही है। इसके लिए हर क्षेत्र में खरीद बिक्री दोनों के लिए सप्लाई चेन तैयार की जा रही है। भारत के लघु उद्यमी और छोटे व्यापारी केवल कमीशन एजेंट या फ्रेंचाइजी के रूप में काम करेंगे।

भारत सरकार द्वारा नीति और कानूनों में किए जा रहे बदलाव को एक साथ जोड़कर देखने से नए भारत की भावी तस्वीर स्पष्ट होती है। अब हम आसानी से समझ सकते हैं कि सरकार स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के लिए नही बल्कि खेती को कॉरपोरेट के हवाले करने के लिए कानून बना रही है। लेकिन जैसे शराब भरी बोतल पर अमृत लिख देने से शराब अमृत नहीं बन जाती वैसे ही कॉरपोरेट को लाभ पहुंचाने के लिए नीतियां बनाकर उसे स्वदेशी और आत्मनिर्भरता कह देने से देश आत्मनिर्भर नही बनता। मेक इन इंडिया और परनिर्भरता को स्वदेशी और आत्मनिर्भर कहना केवल झूठ ही नही, बल्कि वह देश के किसान, लघु उद्यमियों और छोटे व्यापारियों के साथ किया जा रहा धोखा है।

जब किसानों के सामने इतनी बड़ी चुनौती हो, तब कुछ किसान संगठन स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें लागू करने की मांग कर देश के किसानों को गुमराह करने का काम कर रहे हैं। कर्ज माफी से किसानों को कुछ लाभ जरूर है, लेकिन इस मांग का महत्व तभी है जब किसानों को कर्ज के जाल से स्थायी मुक्ति के लिए प्रयास किए जाएं। अन्यथा कर्ज माफी किसानों को कम, साहूकार बैंको को ज्यादा मददगार साबित होती है। एमएसपी फसलों का उत्पादन मूल्य नहीं है बल्कि वह किसानों को न्यूनतम मूल्य की गारंटी देने के लिए बनाई गई व्यवस्था है। एमएसपी के तहत कुल उत्पादन के 10 प्रतिशत से कम फसलें खरीद की जाती है। अगर सी2 पर 50 प्रतिशत दाम बढ़ा दिए जाते हैं तब भी किसान की आय में केवल 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी होगी।

प्राकृतिक खेती को रासायनिक खेती में बदलने में, थाली में जहर पहुंचाने में, बीजों की स्वाधीनता, फसलों की जैव विविधता नष्ट कर एक फसली खेती में बदलने के लिए अगर कोई एक व्यक्ति सबसे अधिक जिम्मेदार है तो वह एम. एस. स्वामीनाथन जी है। इसके बावजूद स्वामीनाथन आयोग लागू करो की मांग बेईमानी है।

खेती को रसायन मुक्त और थाली को जहर मुक्त करना जरूरी है। विषरहित खाद्यान्न की बढ़ती मांग को लाभ में परिवर्तित करने के लिए अब कॉरपोरेट कंपनियों ने जैविक खेती और प्राकृतिक खेती करना शुरू कर दिया है। इसके लिए सरकार और कॉरपोरेट कंपनियों ने मिलकर योजना बना ली है।

केंद्र सरकार ने भारत को पांच ट्रिलियन (पचास खरब) डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने के लिए पांच साल में 100 लाख करोड़ रुपयों के हिसाब से हर साल 20 लाख करोड़ रुपये निवेश करने की घोषणा की थी। इस साल सरकार द्वारा घोषित 20 लाख करोड़ रुपयों में लगभग 80 प्रतिशत राशि कर्ज की व्यवस्था है। यह बैंकों की साहूकारी की व्यवस्था है। इसे आप विदेशी बैकों की निवेश अनुमति से जोड़कर देखेंगे तब तस्वीर और साफ होगी।

अभी भी भारत की स्थिति बहुत विकट है लेकिन वर्तमान सरकार जो नीतियां अपना रही है, उससे हम कॉरपोरेटी गुलामी से नहीं बच सकेंगे। उससे देश पूरी तरह से कॉरपोरेटी गुलामी में जकड़ जाएगा। हम अंग्रेजों के डेढ़ सौ साल गुलाम रहे, लेकिन अगर हम कॉरपोरेटी गुलामी में जकड़ गए तो हजारों साल तक इस गुलामी से मुक्त होना संभव नही है। ■

खरीद और बिक्री के लिए सप्लाई चेन का नेटवर्क बनाकर कच्चा माल और प्रक्रिया उत्पाद दुनिया के बाजारों में मुनाफे की संभावना देखकर बेचे जाएंगे। सबकुछ कॉरपोरेट के हाथों में चला जाएगा, किसान गुलामी करेगा।

सामयिक वार्ता अब www.lohiatoday.com पर भी पढ़ सकते हैं।

कोविड-19 महामारी के प्रभाव और आगे की राह

भारत भूषण चौधरी

मानव सभ्यता के इतिहास में कोरोना से उत्पन्न वर्तमान संकट अभूतपूर्व है। इस महामारी ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया। कोई भी देश अछूता नहीं। यह वैश्वीकरण का प्रभाव है, इसलिए भी क्योंकि दुनिया के सभी देश एक-दूसरे से व्यापार, आवाजाही और सांस्कृतिक तौर पर नजदीकी से जुड़ गए हैं। कोविड-19 अब तक के पाए गए वायरसों में सबसे ज्यादा तेजी से फैलाने वाला विषाणु है और बड़ी संख्या में दूसरों को संक्रमित करता है। इसका संक्रमण एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में ही फैलता है। अब तक की प्राप्त जानकारी के अनुसार यह वायरस चीन के वुहान शहर में चमगादड़ से मनुष्य में आया और फिर फैलता ही गया। जिन शहरों/ देशों में वुहान से ज्यादा आवागमन था, वहां यह पहले फैला और आज आठ महीने बाद विश्व के सभी 213 देशों में गांव-गांव तक फैल चुका है।

प्रारम्भिक दौर होने के कारण इस बीमारी का टीका या इलाज अभी तक नहीं है। जनवरी 2021 से पहले आने के आसार भी नहीं है। तब तक सावधानी और बचाव ही उपाय है। कोविड-19 के 80% संक्रमितों में कोई लक्षण नहीं दीखते, फलतः वे दूसरों को बिना जानकारी संक्रमित करते रहते हैं। यही कारण है कि ज्यादा से ज्यादा संख्या में जांच कर संक्रमितों को अलग-थलग रखने पर जोर दिया जाता है। इससे संक्रमण समाप्त तो नहीं होगा, लेकिन एक समय में कम लोग संक्रमित रहेंगे, जिनकी देखभाल और इलाज हमारे सीमित संसाधनों में भी संभव हो पाएगा। साथ ही ज्यादा संख्या में लोग अपनी रोजमर्रा के काम-काज कर पाएंगे, अर्थव्यवस्था धीमी गति से ही सही, लेकिन चलती रहेगी। लेकिन हमारे देश में अभी तक इसके उलट किया गया। जांच की रफ्तार न्यूनतम रही, साथ ही कठोरतम लॉकडाउन लगाया गया। परिणामतः छह महीने बाद भी संक्रमण बढ़त पर ही है, बेरोजगारी चरम पर और अर्थव्यवस्था चकनाचूर हो गई।

भारत के संदर्भ में यह ध्यान में रखा जाना आवश्यक है कि यहां 80% लोग गरीब हैं। भीड़-भाड़ वाली जगहों में रहते/ काम करते और यात्रा करते हैं। उनके संक्रमित होने की संभावना संभ्रांत लोगों से कई गुना ज्यादा है। कोविड-19 से संक्रमित व्यक्ति के जीवनप्रद अंग (वाइटल ऑर्गंस) प्रभावित होते हैं, जिनका इलाज, संरक्षण और गहन मेडिकल देखरेख समय रहते हुए न किया जाए तो मरीज की मौत भी हो सकती है। इस संक्रमण से प्रभावित मरीजों में, (अभी तक के प्राप्त आंकड़ों के अनुसार) मौत की संभावना 2% से 18% के बीच है।

क्या यह स्थिति एक दैवीय प्रकोप की तरह है, जिसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता था? जापान, दक्षिण कोरिया, वियतनाम, न्यूजीलैंड, जर्मनी जैसे कई देश हैं जिन्होंने

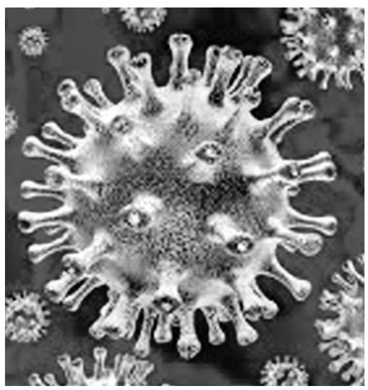

थोड़े नुकसान में ही और कम समय में इस महामारी पर काबू पाया और अपने कामों पर वापस आ गए। लेकिन आज छह महीने गुजर जाने के बाद भी भारत में संक्रमण और मौतें बढ़त पर हैं। विशेषज्ञों के अनुसार, नवंबर तक ये आंकड़े बढ़ते ही जाएंगे। ऐसा क्यों? क्या अभी जिस तरह हमारा देश महामारी और उससे उपजी समस्याओं के निराकरण का प्रयास कर रहा है, वे सही और काफी हैं?

दर्जनों देशों के अनुभव सामने होने के बावजूद खतरे को न भांपना, विदेश से आने वाले यात्रियों की सघन जांच न करना, उन पर पाबंदी न लगाना, संक्रमण फैल जाने के बाद भी 'नमस्ते ट्रंप' और मध्य प्रदेश सरकार गिराने में व्यस्तता आदि के कारण संक्रमण देश के हर भाग में बेतहाशा फैलता रहा। कोरोना संकट को तबलीगियों के जिम्मे लगाते रहना मौजूदा हुक्मरानों के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति तो करता रहा, लेकिन संक्रमण की रोकथाम पर इनका विपरीत असर हुआ। जांच, पीपीई किट्स और अस्पतालों, बिस्तरों आदि के इंतजाम को तवज्जो न देना, गलत समय पर क्रूर तरीके से (बिना समय दिए, प्रवासी मजदूरों के खाने-रहने की व्यवस्था बिना किए) लॉकडाउन लगा देना, ये सब ऐसे बिना सोचे-समझे किए गए कृत्य रहे जिनसे करोड़ों कामगारों के अस्तित्व का संकट पैदा हो गया। उनके लाखों की संख्या में, बिना जांच कई राज्यों से होते हुए घर वापस

सामयिक वार्ता अब
www.lohiatoday.com
पर भी पढ़ सकते हैं।

जाने से कोरोना गांव-गांव तक फैल गया। ये केंद्र सरकार के अधिनायक वादी प्रवृत्ति और विशेषज्ञों की सलाह के बिना निर्णय लेने की आदत के कारण हुआ।

अगर हम अपने देश के कोरोना पर नियंत्रण के प्रयासों को वियतनाम, दक्षिण कोरिया, जर्मनी या चीन जैसे देशों से तुलना करें तो पाएंगे कि हमारे यहां अत्यधिक संक्रमण सबसे लंबी अवधि तक जारी है। हमारी रणनीति में पुलिस-बल पर जरूरी से ज्यादा निर्भरता रही है। वहीं जिन मुल्कों ने बेहतर प्रदर्शन किया वहां विशेषज्ञों की सलाह, नागरिकों की भागीदारी, जनता को पूरा विश्वास में रखना, अफवाहों को फैलने न देना, तकनीक का अधिक और बेहतर इस्तेमाल और लगातार जानकारी के आदान-प्रदान को तवज्जो दी गई।

हम ताली, थाली, दिया, पुष्पवर्षा जैसे टोटकों में समय और संसाधन बर्बाद करते रहे। पारदर्शी तरीके से प्रेस कांफ्रेंस कर समस्या से संबंधित सभी जानकारियों से जनता को अवगत कराना तो हमारे देश में अब होता ही नहीं। हमारे प्रधानमंत्री तो कभी प्रेस वार्ता करते ही नहीं।

पिछले दो दशकों में स्वास्थ्य और अनुसंधान के क्षेत्रों की इतनी उपेक्षा की गई है कि कोरोना जैसी विभीषिका का सामना करने के लिए हमारे पास विशेषज्ञता का अभाव और वैज्ञानिक संस्थाओं में ताल-मेल की कमी का खामियाजा पूरे देश को भुगतना पड़ रहा है। शुरुआत में केंद्र सरकार द्वारा रोज तुगलकी फरमान जारी करते रहना और बाद में स्थिति अनियंत्रित हो जाने पर चुप्पी साध लेना, किसी जनतांत्रिक सरकार के कर्तव्य त्याग का अकेला उदाहरण होगा। आज भी जब हम रोज के संक्रमण और मौत के आंकड़ों में लगातार सभी देशों से आगे है, जांच की संख्या कई गुना कम है। सरकार का प्रयास यह दिखाने का है कि हम सबसे बेहतर उपाय कर रहे हैं, दूसरे देशों के लिए उदाहरण पेश कर रहे हैं, जो एक विश्व स्तर का झूठ है। शासक दल के एक अत्यंत करीबी सहयोगी ने तो बिना वैज्ञानिक प्रमाण के कोरोना के इलाज की दवा भी बेच दी। कोरोना से बचाव के लिए एक केंद्रीय मंत्री पापड़ का प्रचार कर रहे थे जो अब खुद कोरोना के शिकार हो गए हैं। लेकिन सबसे दुखद बात यह है कि हमारे कोविड स्वास्थ्य कर्मियों को उचित उपकरण, समय पर वेतन व सुविधाएं नहीं दी जा रहीं। उनके साथ दुर्व्यवहार की तमाम घटनाएं हो रही हैं। कोविड मरीजों से सहानुभूति रखने की जगह उनका तिरस्कार किया जा रहा है। यह हमारे समाज की संवेदनहीनता को उजागर करता है।

कोविड-19 की महामारी ने हमारे देश में जहां एक तरफ लाखों लोगों को बीमार किया, 60,000 से भी अधिक लोगों की जान ले ली, वहीं कई और भी गंभीर समस्याएं पैदा कर दीं। मसलन करोड़ों की संख्या में नौकरी/मजदूरी के अवसर चला जाना, कुपोषण और संबंधित रोगों का बढ़ना, अर्थव्यवस्था का पटरी से उतर जाना, घरेलू हिंसा, लूटपाट, बच्चों की तस्करी, चोरी, आदि में बेतहाशा वृद्धि प्रमुख हैं। आर्थिक, सामाजिक कारणों से और अकेलेपन से जनसंख्या के बड़े हिस्से में मानसिक तनाव बेहद बढ़ा है। आत्महत्याओं के मामले बढ़े हैं। अस्पताल, ओपीडी, क्लिनिक्स आदि के बंदप्राय रहने से साधारण रोगियों का इलाज नहीं हो पाया जो असाध्य रोग में परिणत हो गए। कैंसर, गुर्दे, दिल आदि के कई गंभीर रोगियों की समय पर अस्पताल में जगह नहीं मिलने से जानें भी चली गईं। टीकाकरण कार्यक्रम में बाधा के कारण जो बच्चे छूट जाएंगे, उनके असाध्य रोगों से पीड़ित होने का खतरा भी बढ़ा है।

राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगने और अदालतों में काम-काज नहीं होने के कारण मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं में बेतहाशा बृद्धि हुई है। भाजपा सरकार मौके का फायदा उठाकर अपने विरोधियों, बुद्धिजीवियों, अल्पसंख्यकों पर अत्याचार कर रही है। उन्हें यूएपीए, एनएसए, राजद्रोह जैसे क्रूर कानूनों के तहत जेलों में बंद कर रही है। नागरिकों को जमानत नहीं मिल रही। श्रमिक विरोधी कानून लागू कर दिए गए हैं। राजनीतिक, सामाजिक कार्यकर्ता अपना विरोध तक नहीं दर्ज करा सकते। जेलों में बंद विचाराधीन कैदी बड़ी संख्या में कोरोना से संक्रमित हो रहे हैं।

भारत के संदर्भ में यह ध्यान में रखा जाना आवश्यक है कि यहां 80% लोग गरीब हैं। भीड़-भाड़ वाली जगहों में रहते/ काम करते और यात्रा करते हैं। उनके संक्रमित होने की संभावना संभ्रांत लोगों से कई गुना ज्यादा है।

इस महासंकट को विभिन्न देशों ने जिन तरीकों से हल करने की कोशिश की, और उनके जो नतीजे अभी तक सामने आए हैं, उनसे सीख मिलती है कि वैज्ञानिक घटनाओं को जुमला, आयोजनों, सामाजिक द्वेष आदि हथकंडों से झुठलाया नहीं जा सकता। महामारी जैसी समस्याओं का समाधान अहंकार, आत्ममुग्धता, मजमा और चकाचौंध जगाने से नहीं होता। बल्कि जमीनी स्तर पर संजीदगी से सभी को विश्वास में लेकर अत्यधिक संसाधन और कर्मियों को लगाकर योजनाबद्ध तरीके से ही इनका हल किया जा सकता है।

ऐसे माहौल में जनता के बीच की विश्वसनीयता अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। ताकि सरकारी तंत्र की ओर से दिए गए निर्देशों पर लोग पूरी तरह विश्वास करें और उसका अनुकरण करें। पीछे जब आरोग्य-सेतु के इस्तेमाल की बात चली तो जनता ने इसे शक की निगाह से देखा। कई स्थानों पर स्वास्थ्यकर्मी जब मुहल्ले में नमूने आदि लेने गए तो उन पर हमला किया गया। महामारी से निपटने के लिए राष्ट्रीय रोग नियंत्रण केंद्र (एनसीडीसी), जो अभी मृतप्राय संस्था है, उसे सशक्त, व्यापक, पेशेवर एवं स्वायत्त बनाया जाए। अमेरिका की संस्था, सेंटर फॉर डिजिज कंट्रोल (सीडीसी) ने कई संक्रमण वाले रोगों की रोकथाम में उल्लेखनीय काम किया है। हालांकि इस संस्था के अमेरिका में होते हुए भी ट्रंप जैसे आत्ममुग्ध और अहंकारी नेता ने उसे काम नहीं करने दिया, जिसका नतीजा सामने है। जन स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, स्कूली शिक्षा, गरीबी उन्मूलन का कोई भी कार्यक्रम तभी सफल होता है, जब उसे आर्थिक और प्रसाशनिक रूप से सशक्त विकेन्द्रीकृत शासन संस्थाओं द्वारा परिचालित किया जाए। जैसे जिला परिषद्, ग्राम पंचायत, नगर निकाय, नगर पंचायत वगैरह। कोरोना महामारी में सभी सफल देशों में भी ये संस्थाएं दशकों से सक्रिय रखी गई हैं। इसीलिए अभी इस कार्यक्रम में उनकी प्रमुख भूमिका रही है। वहां के म्युनिसिपल कॉरपोरेशन और कॉउंटी प्रशासन वगैरह। भारत में इन संस्थाओं को पूरा लोकतांत्रिक, सशक्त और सक्रिय बनाया ही नहीं गया है। नतीजतन महामारी प्रबंधन अधकचरे ढंग से हो रहा है।

हमारे देश में स्वास्थ्य सुविधाओं की भीषण कमी है। इस मद में हम अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का मात्र 1.3% खर्च करते हैं जबकि बाकी देश 7% से 12% तक। नतीजतन पूरे देश में जांच (जो भी हुआ सिर्फ बड़े शहरों में हीं), मरीजों का परीक्षण, संदिग्धों को अलग रखने और उनके इलाज में हम समय से सक्षम नहीं हो पाए। ■

आजादी के आंदोलन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का योगदान

दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर (अब सेवानिवृत्त) रहे राजकुमार जैन समाजवादी आंदोलन के प्रमुख व्यक्तित्वों में से रहे हैं। वे बचपन से ही इस आंदोलन से जुड़े और अनेक आंदोलन और संघर्षों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। हाल में समाजवादी नेताओं और आंदोलन को लेकर चल रहे अनर्गल प्रलापों से खिन्न होकर उन्होंने नए साथियों के लिए समाजवादी आंदोलन की पूरी परंपरा को सामने रखने का संकल्प लिया है। इसी के तहत उन्होंने समाजवादी आंदोलन की पूरी परंपरा को लिपिबद्ध किया है। हम इसे लेखमाला के रूप में प्रकाशित करेंगे। प्रस्तुत है इसका पहला भाग।

राजकुमार जैन

भारत को सैकड़ों साल की अंग्रेज़ी गुलामी से मुक्ति महात्मा गांधी की रहनुमाई में अखिल भारतीय कांग्रेस के झंडे तले हुए संघर्ष से मिली। हिंदुस्तान के सभी समाजवादी नेता और कार्यकर्ता महात्मा गांधी को अपना नेता तथा कांग्रेस को अपनी पार्टी मानते थे। फिर क्यों समाजवादियों ने कांग्रेस में रहते हुए अलग से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनाई, इसके क्या कारण थे? इसको जानना बेहद ज़रूरी है।

आज़ादी की लड़ाई में समाजवादियों की दोहरी भूमिका थी, संघर्ष करने, यातना सहने, लंबे-लंबे कारावास को भोगने का कार्य तो इनके नेताओं और कार्यकर्ताओं ने किया ही, परंतु दूसरा काम जो समाजवादियों ने यह किया कि वे आज़ादी के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक सवालों पर कैसी नीति और सिद्धांत बने, जिससे शोषण मुक्त समाजवादी समाज की रचना हो, का दर्शन भी कांग्रेस में उठाते रहे। समाजवादियों ने राष्ट्रीय संघर्ष की प्राथमिकता तथा उसमें कांग्रेस की केंद्रीय भूमिका को स्वीकार किया। साथ ही सामाजिक, आर्थिक वैचारिक दबाव बनाकर कांग्रेस को एक समाजवादी संगठन के रूप में सशक्त बनाने तथा स्वाधीनता संग्राम का आधार व्यापक बनाने के उद्देश्य से पटना में 1934 में कांग्रेस पार्टी की स्थापना की थी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन से पूर्व ही कई प्रांतों में सोशिलस्ट समूह पार्टी बन चुके थे। 1930 में पंजाब में पंजाब सोशलिस्ट पार्टी बन गई। मई 1931 में बिहार सोशलिस्ट पार्टी बनी। 1933 में बंबई सूबे में सोशलिस्ट ग्रुप बना, बड़ौदा गुजरात में फरवरी 1934 में ग्रुप बन चुका था। मार्च 1934 में बनारस में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ, इसी बीच उड़ीसा में भी सोशलिस्ट ग्रुप बन गया।

आज़ादी के संघर्ष में महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, बादशाह खाँ, सुभाषचंद्र बोस, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरदार पटेल के साथ-साथ आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, युसुफ मेहर अली इत्यादि समाजवादी नेता भी पूरी ताकत से डटे थे। गुलामी की जंजीर तोड़कर अंग्रेज़ी राज से मुक्ति महात्मा गांधी और कांग्रेस का एकमात्र लक्ष्य था। कांग्रेस के अंदर और बाहर कई ऐसे तबके थे, जो समाजवादियों पर आरोप लगाते थे कि आज़ादी के मार्ग में वे बाधक बन रहे हैं, क्योंकि इनकी नीतियों के कारण कांग्रेस के आंदोलन में शरीक राजा-महाराजा, जमींदार, जागीरदार, स्वराज्य पार्टी की विचारधारा वाले लोग आंदोलन से छिटक जाएंगे। इन शंकाओं और सवालों का जबाव देते हुए कांग्रेस समाजवादी पार्टी के पटना अधिवेशन में 17 मई 1934 को पार्टी के संस्थापक अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा था 'हम एक ऐसे समय में मिल रहे हैं जब हमारा राष्ट्रीय संगठन (कांग्रेस) एक संकट से गुजर रहा है। दूरगामी महत्व के सवालों पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक कल होने जा रही है। हमारा यह कर्तव्य है कि इस सम्मेलन में हम यह निर्णय करें कि उस महान सभा को महत्वपूर्ण निर्णय लेने में हमारा क्या योगदान होगा। राष्ट्रवादी आंदोलन को समाजवाद की दिशा की ओर मोड़ने की कोशिश करने पर हमें तुरंत इस आलोचना का शिकार होना पड़ता है कि राष्ट्रवाद और समाजवाद को मिलाना कठिन है। अगर अपने देश में हम समाजवाद स्थापित करना चाहते हैं तो हम कांग्रेस के बाहर अपना एक स्वतंत्र ग्रुप क्यों नहीं बना लेते? उसकी नीति से स्वतंत्र होकर काम क्यों नहीं करते और साथ ही निम्नमध्यवर्गीय वर्ग-संगठन के प्रतिक्रियावादी प्रभावों से अपने को मुक्त क्यों नहीं कर लेते। इसका उत्तर यह है कि हम अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ चलने वाले महान राष्ट्रीय आंदोलन से अलग करना नहीं चाहते और कांग्रेस आज उसी का प्रतीक है। हम यह स्वीकार करते हैं कि कांग्रेस में आज कमियां और खराबियां हैं। फिर भी यह देश में आसानी से सबसे बड़ी क्रांतिकारी शक्ति बन सकती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय संघर्ष का वर्तमान चरण बुर्जुआ लोकतांत्रिक क्रांति का है। अतः राष्ट्रीय आंदोलन से अपने को अलग कर लेना आत्मघाती नीति होगी। निःसंदेह कांग्रेस उस राष्ट्रीय आंदोलन का प्रतिनिधित्व करती है।

एक और सवाल है - कांग्रेस से हमारे रिश्तों का। यह कोई मुश्किल मामला नहीं है और आसानी से सुलझाया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि हमारा संगठन कांग्रेस पार्टी के भीतर है। यही बात बड़ी सीमा तक हमारे रिश्ते की व्याख्या कर देती है। हम कांग्रेस के हिस्से हैं। उसके विरोध या उसके प्रति आक्रामकता का प्रश्न ही नहीं है। एक पार्टी के तौर पर हमें कांग्रेस की हलचलों में उन्हें अपना ही समझते हुए भाग लेना है, उन मुद्दों को छोड़कर, जिन पर कांग्रेस की किसी निश्चित नीति से हम असहमत हैं। साथ ही, एक अल्पसंख्यक समूह के नाते, कांग्रेस के भीतर अपने विचारों के प्रचार का हमें अधिकार है तथा अपनी नीति एवं दिशा पर चलते हुए, हमें कांग्रेस की जो नीतियां जनहितकारी न लगें, उनकी समीक्षा और विरोध तक करना चाहिए।

हमारे यह मानने के बावजूद कि वर्तमान भारतीय परिस्थिति में दोनों क्रांतियों को साथ-साथ लाने की संभावना है, एक गुलाम देश के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता समाजवाद के रास्ते में एक पड़ाव है। लेकिन इन मामलों में कोई

निश्चितता नहीं हो सकती। बहुत कुछ स्वतंत्रता आंदोलन के नेतृत्व के गुणों पर निर्भर करेगा। अगर नेतृत्व समाजवादी सिद्धांतों से लैस, राजनीतिक दूरदर्शिता से संपन्न और साहस से काम कर सके और स्थितियां अनुकूल हों तो वह निश्चित तौर पर इससे फायदा उठाएगा।

कांग्रेस के अंदर कांग्रेस समाजवादी पार्टी के गठन तथा आजादी के संघर्ष के साथ, समाजवादी विचारों को थोपकर आजादी की लड़ाई को कमज़ोर करने के आरोप का जवाब देते हुए डॉ. राममनोहर लोहिया ने 5 दिसंबर 1936 को बिहार प्रांतीय कांग्रेस समाजवादी सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में कहाः

हमसे सवाल किया जा सकता है कि तुम समाजवादी दल क्यों बनाए बैठे हो। जब तुम्हारा तात्कालिक लक्ष्य साम्राज्य-विरोध (अंग्रेज राज से मुक्ति) है तो तुम कांग्रेस के अतिरिक्त एक समाजवादी दल क्यों बनाए हो? इसका सीधा-सादा उत्तर तो यही है कि हमारा दूसरा लक्ष्य, चाहे वह इतना तात्कालिक न हो, समाजवाद है। लेकिन यह संपूर्ण उत्तर न होगा। हमारा समाजवादी दल इसलिए भी है कि हम समाजवाद के जरिए इतिहास के परिवर्तन के नियमों को अच्छी तरह समझ सकते हैं, सभी प्रगतिशील लड़ाइयों में बढ़कर हाथ बंटा सकते हैं और फलतः स्वतंत्रता-संग्राम को भी ज्यादा अच्छी तरह चला सकते हैं। इसलिए जब हम आजकल अक्सर यह उपदेश सुनते हैं कि समाजवादियों को पहले स्वराज्य का प्रश्न हल करना चाहिए, फिर बाद में वे समाजवाद की बातें करें तो हमें इस उपदेश के बेतुकेपन पर हंसी आती है। हममें किसने कब और कहां कहा है कि राष्ट्रीय आज़ादी के पहले ही हम समाजवादी आज़ादी हासिल करने का हौसला रखते है। हमने तो साफ-साफ कहा है कि राष्ट्रीय आज़ादी ही हमारा तात्कालिक लक्ष्य है। फिर भी हमें यह उपदेश क्यों दिया जाता है?

17 मई, 1934 को ही क्यों पटना में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का स्थापना सम्मेलन आयोजित किया गया। इसका भी एक विशेष कारण था, क्योंकि अगले दिन ही पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हो रहा था। तात्कालिक कांग्रेस में दो तरह की विचारधारा के लोग थे। एक वर्ग समाजवादी सोच का था, जो 1930, 1939 के सिविल नाफारमानी तथा गोलमेज कांफ्रेंस की नाकामी के कारण उपजी निराशा को तोड़कर तत्काल आज़ादी के लिए संघर्ष करने पर उतारू था। इस सोच के अधिकतर युवक, अंग्रेज़ी हुकूमत से किसी प्रकार के समझौते के विरोध में थे। वे नहीं चाहते थे कि अंग्रेज़ों द्वारा सुधारों के नाम पर होने वाले असेंबली चुनावों में भाग लिया जाए। दूसरा तबका स्वराज पार्टी का था, जो कि अंग्रेज़ी हुकूमत के साथ सहयोग करने का हिमायती था। वे संवैधानिक एवं सुधारवादी थे। इनके सदस्य संघर्ष में विश्वास नहीं करते थे। वे केवल विधायिका में प्रवेश के इच्छुक थे। स्वराजवादियों में अधिकतर बड़े भूस्वामी, रजवाड़े, उच्च स्तर का जीवन जीने वाले, उदारवादी, मजदूर-किसान विरोधी थे। एक तरफ उनकी स्वराज पार्टी भी थी और दूसरी ओर कांग्रेस के अंदर भी वे शामिल थे। गांधी जी का समर्थन भी इनको मिल गया था। पटना में होने वाले कांग्रेस सम्मेलन में स्वराजवादी काउंसिल प्रवेश का प्रस्ताव पास कराने के लिए आतुर थे। नवगठित कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने कांग्रेस अधिवेशन में एक वैकल्पिक प्रस्ताव पेश करने निर्णय लिया जो इस प्रकार था-

वैकल्पिक प्रस्ताव : 'कराची कांग्रेस में पारित मूल-अधिकारों वाले प्रस्ताव की प्रस्तावना घोषित करती है कि आम लोगों के शोषण की समाप्ति के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता में करोड़ों, भूखों, पीड़ितों की वास्तविक आर्थिक स्वतंत्रता अवश्य शामिल होनी चाहिए। स्वतंत्रता-संघर्ष का आधार विस्तृत करने और स्वराज्य प्राप्ति के बाद भी आम लोग आर्थिक शोषण के शिकार न बने रहें- इसे पक्का करने के लिए कांग्रेस को एक ऐसा कार्यक्रम अपनाना चाहिए जो कर्म और उद्देश्य में समाजवादी हो। इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कांग्रेस से सिफारिश करती है कि वह घोषित करें कि उसका उद्देश्य समाजवादी राज्य की स्थापना है और सत्ता पर कब्जा करने के बाद वह निम्नलिखित राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सिद्धांतों के आधार पर भारतीय राज्य के लिए संविधान निर्माण के लिए एक संविधान सभा आहूत करेगी, जो सार्वभौम बालिग मताधिकार (उन्हें मताधिकार नहीं होगा जिन्होंने स्वतंत्रता-संघर्ष का विरोध किया है। इसमें प्रतिनिधित्व कार्यात्मक आधार पर दिया जाएगा) के आधार पर निर्वाचित हो, सभी शक्तियों का उत्पादन जनता को हस्तांतरित हो। देश के आर्थिक जीवन का विकास राज्य द्वारा नियोजित एवं नियंत्रित हो, उत्पादन, वितरण एवं विनिमय के सभी संयंत्रों के उत्तरोत्तर समाजीकरण के उद्देश्य से इस्पात, कपड़ा, जूट, रेलवे, जहाजरानी, खदान, बैंक एवं सार्वजनिक उपयोगिता जैसे प्रमुख एवं आधारभूत उद्योगों का समाजीकरण किया जाएगा, विदेश-व्यापार पर राज्य का एकाधिकार होगा, ऐसे क्षेत्रों, जिनमें समाजीकरण नहीं हुआ है, में उत्पादन, वितरण एवं साख का राज्य द्वारा विनियमन होगा, राजाओं, जमींदारों एवं अन्य सभी शोषक-वर्गों का खात्मा, किसानों के बीच भूमि का पुनर्वितरण किया जाएगा, देश में पूरी कृषि के अंतोगत्वा सामूहिकीकरण के विचार से सहकारी एवं सामूहिक खेती को राज्य द्वारा प्रोत्साहन दिया जाएगा, किसानों एवं मजदूरों पर बकाया ऋणों की माफी होगी।

अखिल भारतीय कमेटी सिफारिश करती है कि जन आंदोलन पैदा करने का एकमात्र कारगर तरीका आम लोगों को उनके आर्थिक हित के आधार पर संगठित करना है। कांग्रेस जन किसान एवं मजदूर संघों का संगठन करें और जहां ऐसे संघ अस्तित्व में हैं, वहां आम लोगों के दैनान्दिन संघर्षों में हिस्सा लेने और अंततः उन्हें अंतिम लक्ष्य तक ले जाने में नेतृत्व करने के विचार से उनमें प्रवेश करें।

इस प्रस्ताव के साथ एक अन्य प्रस्ताव कौंसिल प्रवेश से संबंधित पेश किया गया, जिसमें सशर्त कौंसिल प्रवेश का समर्थन था। इनमें था कि कार्यक्रम को कांग्रेस के खुले अधिवेशन में स्वीकृत किया जाए न कि कुछ लोगों द्वारा पास कर लिया जाए। संसदीय गतिविधि, कांग्रेस के निर्देशानुसार तथा नियंत्रण में हो न कि किसी स्वशासी संस्था के हाथ में और कार्यक्रम पूर्ण रूप से समाजवादी विचार से भरा हो।

कांग्रेस कार्यकारिणी में जयप्रकाश नारायण ने प्रस्ताव प्रस्तुत किया तथा आचार्य नरेन्द्र देव ने इसका समर्थन किया। समाजवादियों के संशोधन के समर्थन में 35 मत तथा उसके विरोध में 86 मत पड़े। इसलिए संशोधन अस्वीकृत हो गया।

समाजवादियों का वैकल्पिक प्रस्ताव गिर जरूर गया, परंतु इसके राजनीतिक प्रभाव दूरगामी पड़े, क्योंकि पहली बार, कांग्रेस में अब तक चल रहे रचनात्मक कार्यक्रम तथा आंदोलनों के अतिरिक्त वैचारिक रूप से राष्ट्रीय आंदोलन को समाजवादी विचारों के आधार पर पुष्ट करने का एक कदम भी था।

...जारी ■

हागिया सोफिया का संग्रहालय से मस्जिद बनना: बदल रहा है समय

राम पुनियानी

तुर्की के वर्तमान राष्ट्रपति इरदुगान, जो कई सालों से सत्ता में हैं, धीरे-धीरे इस्लामवाद की ओर झुकते रहे हैं। इसी क्रम में उन्होंने हगिया सोफिया संग्रहालय को मस्जिद में बदल दिया है। हागिया सोफिया मूलतः एक चर्च था, जिसे 15वीं सदी में मस्जिद बना दिया गया था। तुर्की ने अतातुर्क मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में खलीफा, जो कि ओटोमन (उस्मानी) साम्राज्य का अवशेष था, को अपदस्थ कर, धर्मनिरपेक्षता की राह अपनाई। खलीफा को पूरी दुनिया के मुसलमानों के एक हिस्से की सहानुभूति और समर्थन हासिल था। अतातुर्क की धर्मनिरपेक्षता के प्रति पूर्ण और अडिग प्रतिबद्धता थी। उनके शासनकाल में हागिया सोफिया मस्जिद को संग्रहालय में बदल दिया गया, जहां सभी धर्मों के लोगों का दर्जा बराबर था और जहां सभी का स्वागत था।

पिछले तीन दशकों में वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य में व्यापक परिवर्तन आए हैं। उसके पहले के दशकों में दुनिया के विभिन्न देशों में साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक ताकतों से मुक्ति के आंदोलन उभरे और लोगों का ध्यान दुनियावी मसलों पर केंद्रित रहा। जो देश औपनिवेशिक ताकतों के चंगुल से मुक्त हुए, उन्होंने औद्योगीकरण, शिक्षा और कृषि के विकास को प्राथमिकता दी। भारत, वियतनाम और क्यूबा उन देशों में से थे, जिन्होंने अपने देश के वंचित और संघर्षरत तबकों के सरोकारों पर ध्यान दिया और धार्मिक कट्टरपंथियों को किनारे कर दिया। इन देशों ने धर्म की दमघोंटू राजनीति से निजात पाने के लिए हरसंभव प्रयास किए। निसंदेह कुछ देश ऐसे भी थे, जहां के शासकों ने पुरोहित वर्ग से साठगांठ कर सामंती मूल्यों को जीवित रखने का प्रयास किया और अपने देशों को

पिछड़ेपन से मुक्ति दिलवाने की कोई कोशिश नहीं की। ऐसे देशों की नीतियां सांप्रदायिक और संकीर्ण सोच पर आधारित थीं। हमारे दो पड़ोसी- पाकिस्तान और म्यांमार इसी श्रेणी में आते हैं।

सन् 1980 के बाद से अनेक कारणों से धर्मनिरपेक्ष-प्रजातांत्रिक शक्तियां कमज़ोर पड़ने लगीं और धर्म का लबादा ओढ़े राजनीति का बोलबाला बढ़ने लगा। इस राजनीति ने समावेशी मूल्यों और नीतियों को हाशिए पर ढकेलना शुरू कर दिया, राज्य को जन कल्याणकारी नीतियों से भटकना प्रारंभ कर दिया और शिक्षा और औद्योगीकरण के क्षेत्र में प्रगति को बाधित किया। पिछले तीन दशकों में धर्म के नाम पर राजनीति का दबदबा बढ़ा है। इस्लामवाद, ईसाईवाद, हिंदुत्व और बौद्ध कट्टरपंथियों की आवाजें बुलंद हुई हैं और ये सभी विभिन्न देशों को विकास की राह से भटका रहे हैं और समाज के बहुसंख्यक तबके को बदहाली में ढकेल रहे हैं।

अमेरिका में डोनाल्ड ट्रंप ईसाई धर्म के नाम पर प्रत्यक्ष और परोक्ष ढंग से अपीलें कर रहे हैं। म्यांमार में अशिन विराथू बौद्ध धर्म के नाम पर हिंसा भड़का रहे हैं। श्रीलंका में भी कमोबेश यही हालात हैं। वहां वीराथू जैसे लोगों का प्रभाव बढ़ रहा है। भारत में हिंदुत्व की राजनीति परवान चढ़ रही है। अफगानिस्तान के तालिबान अपने देश में ही नहीं, वरन पश्चिमी और मध्य एशिया में भी तांडव कर रहे हैं। अफगानिस्तान में भगवान बुद्ध की मूर्तियों का विरूपण इसका उदाहरण है। इसी तरह, अयोध्या में बाबरी मस्जिद का ध्वंस देश के इतिहास का एक दुखद अध्याय रहा है, जिसका इस्तेमाल हिन्दू राष्ट्रवादियों ने अपनी राजनीति को आगे बढ़ाने के लिए किया।

ये तो इस बदलाव के केवल प्रत्यक्ष प्रभाव हैं। इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभाव भी अत्यंत विनाशकारी हुए हैं। इससे नागरिकों और विशेषकर अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर गहरी चोट पहुंची है। यह सब वैश्विक स्तर पर हो रहा है। कुछ दशक पहले तक साम्राज्यवादी ताकतें 'मुक्त दुनिया बनाम एकाधिकारवादी शासन व्यवस्था (समाजवाद)' की बात करती थीं। 9/11 के बाद से, 'इस्लामिक आतंकवाद' उनके निशाने पर है। इस समय पूरी दुनिया में अलग-अलग किस्म के कट्टरपंथियों का बोलबाला है। वे प्रजातंत्र और मानव अधिकारों को कमजोर कर रहे हैं।

भारत, वियतनाम और क्यूबा उन देशों में से थे, जिन्होंने अपने देश के वंचित और संघर्षरत तबकों के सरोकारों पर ध्यान दिया और धार्मिक कट्टरपंथियों को किनारे कर दिया। इन देशों ने धर्म की दमघोंटू राजनीति से निजात पाने के लिए हरसंभव प्रयास किए।

हगिया सोफिया संग्रहालय को मस्जिद में बदले जाने की घटना को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इरदुगान ने अपने राजनीतिक करियर की शुरुआत इस्ताम्बुल के मेयर के रूप में की थी। उन्होंने इस पद पर बेहतरीन काम किया और आगे चल कर वे तुर्की के प्रधानमंत्री बने। शुरुआती कुछ वर्षों में उन्होंने आर्थिक मोर्चे पर बहुत अच्छा काम किया। बाद में वे आत्मप्रशंसा के जाल में फंस गए और सत्ता की भूख के चलते इस्लामिक पहचान की राजनीति की ओर झुकने लगे। उनकी नीतियों से देश के नागरिकों की जिंदगी मुहाल होने लगी और नतीजे में स्थानीय संस्थाओं के चुनाव में उनकी हार हो गई।

इसके बाद उन्होंने इस्लामवाद को पूरी तरह अपना लिया और इस्ताम्बुल की इस भव्य इमारत- जो तुर्की की वास्तुकला का सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक है- को मस्जिद में बदलने का निर्णय लिया। मुसलमानों का एक तबका इसे 'इस्लाम की जीत' बताकर जश्न मना रहा है। इसके विपरीत इस्लाम के वास्तविक मूल्यों और उसकी मानवीय चेहरे की समझ रखने वाले मुसलमान, इरदुगान के इस निर्णय का कड़ा विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि इस्लाम में धार्मिक मामलों में जोर-जबरदस्ती के लिए कोई जगह नहीं है (तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन है और मेरे लिए मेरा दीन है)। यह भारत में व्याप्त इस धारणा के विपरीत है कि देश में तलवार की नोक पर इस्लाम फैलाया गया।

इस्लाम के गंभीर अध्येता हमें यह याद दिलाते हैं कि एक समय पैगम्बर मोहम्मद गैर-मुसलमानों को भी मस्जिदों में प्रार्थना करने के लिए आमंत्रित करते थे। कहने की ज़रूरत नहीं कि हर धर्म में अनेक पंथ होते हैं और इन पंथों के अपने-अपने दर्शन भी होते हैं। इस्लाम में भी शिया, सुन्नी, खोजा, बोहरा और सूफी आदि पंथ है और कई विधिशास्त्र भी, जिनमें हनाफी और हन्नाबली शामिल हैं। ईसाईयों में कैथोलिकों के कई उप-पंथ हैं और प्रोटेस्टेंटों के भी। हर पंथ अपने आपको अपने धर्म का 'असली' संस्करण बताता है। सच तो यह है कि अगर विभिन्न धर्मों में कुछ भी असली है तो वह है अन्य मनुष्यों के प्रति प्रेम और करुणा का भाव। धर्मों के कुछ पक्ष, सत्ता की लोलुपता को ढकने के आवरण मात्र है। इसी के चलते कुछ लोग जिहाद को उचित बताते हैं, कुछ क्रूसेड को और अन्य धर्मयुद्ध को।

हागिया सोफिया को मस्जिद में बदलने के निर्णय के दो पक्ष हैं। चूंकि इरदुगान की लोकप्रियता में तेजी से गिरावट आ रही थी, इसलिए उन्होंने धर्म की बैसाखियों का सहारा लिया। दूसरा पक्ष यह है कि दुनिया के अनेक देशों में कट्टरपंथियों का बोलबाला बढ़ रहा है। सन् 1920 के दशक में कमाल अतातुर्क धर्म की अत्यंत शक्तिशाली संस्था से मुकाबला कर धर्मनिरपेक्ष नीतियां और कार्यक्रम लागू कर सके। पिछले कुछ दशकों में, धार्मिक कट्टरता ने अपना सिर उठाया है। इसका प्रमुख कारण है अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान में सोवियत सेनाओं से मुकाबला करने के लिए अलकायदा को खड़ा करना और बाद में सोवियत यूनियन का पतन, जिसके चलते अमेरिका दुनिया की एकमात्र विश्वशक्ति बन गया। अमेरिका ने दुनिया के कई इलाकों में कट्टरतावाद को प्रोत्साहन दिया। इससे धीरे-धीरे धर्मनिरपेक्षता की जमीन पर धर्म का कब्जा होता जा रहा है।

(हिंदी अनुवाद : अमरीश हरदेनिया) ■

पुस्तक समीक्षा

राजसत्ता, पूंजीसत्ता और धर्मसत्ता के गठबंधन खोलती पुस्तक

कश्मीर उप्पल

सुभाष गाताडे की पुस्तक 'चार्वाक के वारिस' अपने चार भागों के अठारह आलेखों में एक साथ कई पुस्तक पढ़ने का आव्हान और चैलेंज भी है। सुभाष गाताडे अपनी 'प्रस्तावना' में कहते हैं कि 'हमारा वक्त, एक ऐसा वक्त जब विचार को ही द्रोह साबित किया जा रहा है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बंदिशों की बात पुरानी पड़ गई है, फिलवक्त विचारों पर ही स्याह छायाएं मंडराती दिख रही हैं, उसी पर अधिकाधिक बंदिशें लगती दिख रही हैं।' ऐसे वक्त में यह पुस्तक 'तर्क करने का साहस' करने के लिए प्रेरित करती है। इस वक्त तर्क करना बहुत जरूरी है क्योंकि जनसमुदाय उद्वेलित और आंदोलित भी है, बस उसके जेहन में मानव मुक्ति का फलसफा नहीं है। मानव मुक्ति का फलसफा क्या है? किसी देश के आम लोगों तक मानव मुक्ति का फलसफा कैसे पहुंचता है? वे कौन लोग थे, जिन्होंने मानव मुक्ति के लिए अपने प्राण तक उत्सर्ग कर दिए थे? यह कह सकते हैं कि हमारे देश के ही नहीं वरन् पूरे विश्व के मानव मुक्ति फलसफे का यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

'चार्वाक के वारिस' का पहला भाग बंद-दिमागी एवं अतार्किकता के प्रश्नों पर केंद्रित है। दुनिया के किसी भी अन्य इलाके की तुलना में पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान में अतार्किकता तेजी से बढ़ी है और खतरनाक हो चली है। हमारे देश में भी पिछले चार वर्षों के विज्ञान कांग्रेस के वार्षिक सम्मेलन में तथाकथित वैज्ञानिकों ने जो तर्क रखे हैं, वे बहुत डरा देने वाले हैं। किसी देश के तर्कवादी विद्वान सरकार के दरबारी बनने लगें तो सरकार और देश के पतन का मार्ग खुल जाता है। हमारे देश के अग्रणी शिक्षा संस्थानों में विज्ञान की नई शाखा के तौर पर काउपैथी या गोविज्ञान का प्रवेश होने लगा है। कई शिक्षण संस्थानों में मिथकशास्त्र को विज्ञान का दर्जा दिया जा रहा है। देश में 'राष्ट्र रक्षा महायज्ञ' किए जा रहे हैं। आम की लकड़ी जलाने और गाय के दूध से बने घी को उस पर डालकर प्रदूषण कम किया जा रहा है।

आजकल देश की विधानसभाओं और बड़े संस्थानों में वास्तुदोष और भूत-प्रेत की छाया की चर्चा होती है। संविधान की धारा 51ए/एच स्पष्ट करती है कि सभी नागरिकों की बुनियादी जिम्मेदारी होगी कि 'वह वैज्ञानिक चिंतन, मानवता और अनुसंधान को विकसित करेंगे।' परंतु हमारे पूरे देश में जिम्मेदार पदों पर आसीन लोगों का आचरण भारतीय संविधान की मूलभावना के प्रतिकूल बनता जा रहा है। देश के प्रधानमंत्री तक विज्ञान सम्मेलनों तक में हास्यास्पद बयान देते हैं। इस संदर्भ में सुभाष गाताडे सोमनाथ मंदिर के उद्घाटन के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को स्मरण करते हैं। तत्कालीन राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसादद को सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण के बाद उद्घाटन के लिए बुलावा आया, तब नेहरू ने यही कहा कि आप व्यक्तिगत तौर पर उसमें शामिल हो सकते हैं, मगर एक सेक्यूलर मुल्क के राष्ट्रपति के तौर पर नहीं। अंततः राजेंद्र प्रसाद राष्ट्रपति के तौर पर नहीं, बल्कि आम नागरिक के तौर पर उद्घाटन में शामिल हुए थे। इस पुस्तक में हमारे देश में बढ़ते जा रहे अतार्किक और अवैज्ञानिक सोच के इतने उदाहरण है कि रोने और हंसने को मन करता है।

पुस्तक के पहले भाग का दूसरा आलेख 'जड़बुद्धिपन' पर है। इसमें साधुओं, बाबाओं और महात्माओं के साथ-साथ पढ़े-लिखे लोगों और नेताओं के अनगिनत किस्से हैं। इसी अध्याय में 'डेमोक्रेट्स से चार्वाक' में ग्रीक एवं भारतीय प्राचीन दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। यह अच्छा होता यदि ग्रीक और भारतीय दर्शन पर एक स्वतंत्र और अधिक विस्तृत एक स्वतंत्र भाग ही होता। 'हममें से जड़बुद्धि कौन नहीं' आलेख का एक हिस्सा बनने से मानों पुस्तक का मुख्य स्वर ही दब गया है। डेमोक्रेट्स से चार्वाक तक का इतिहास बतलाता है कि तर्कशीलता और वैज्ञानिक सोच को दबाने की प्रवृत्ति बहुत प्राचीन रही है। आज जो कुछ दिख रहा है वह एक ऐतिहासिक विडम्बना का ही दूसरा चरण है। यह सब हमारे समय में हो रहा है इसलिए दर्शक बने रहने का अर्थ अपराधी बने रहना है।

डेमोक्रेट्स ग्रीस में ईसा पूर्व 460 वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। उन्हें अणु सिद्धांत का जनक/प्रस्तावक भी कहा जाता है। डेमोक्रेट्स ईश्वर पर लोगों के विश्वास को भी समाप्त करना चाहते थे क्योंकि उनका मानना था कि इन विश्वासों को इसलिए लाया गया ताकि ऐसी परिघटनाओं का स्पष्टीकरण किया जा सके, जिनके लिए तब तक वैज्ञानिक स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं थे। प्राचीन ग्रीस में डेमोक्रेट्स की उपेक्षा हुई। सुकरात के शिष्य प्लेटो सुकरात चाहते थे कि डेमोक्रेट्स की सारी किताबें जला दी जाएं। दार्शनिक बर्टांड रसेल के अनुसार 'प्लेटो की यह इच्छा

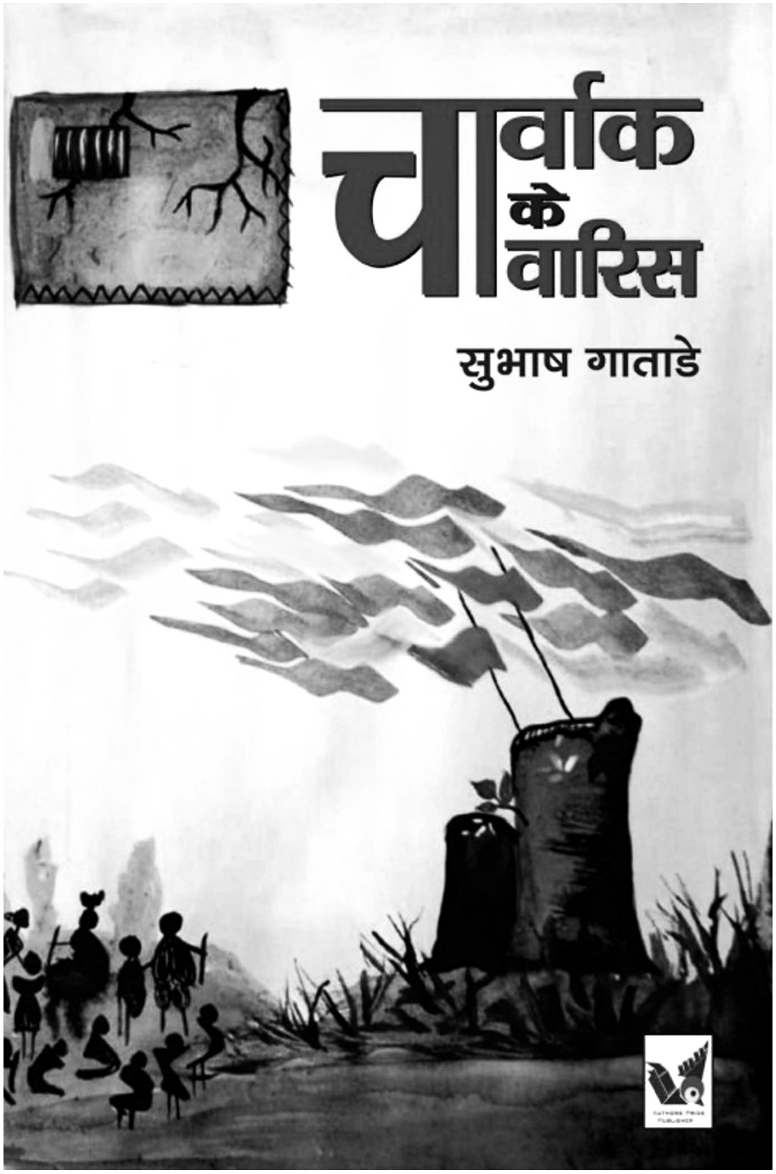

शायद इस तरह पूरी हुई कि आज डेमोक्रेट्स की रचनाएं बिल्कुल उपलब्ध नहीं है।' हम प्लेटो का दूसरा चेहरा देखते हैं, जिसकी चर्चा कभी नहीं हुई है।

इस आलेख से स्पष्ट होता है कि अनेक दार्शनिकों के वैज्ञानिक आंदोलन की धारा के विरुद्ध टकराव की स्थिति सदैव बनी रही है। ग्रीक दार्शनिकों की तरह भारत में भी चार्वाकों और ब्राह्मणवादी दर्शनों के बीच संघर्ष चलता रहा है। आज हमारे देश में जो कुछ अतार्किक हलचल हो रही है, वह उसी पुरानी ब्राह्मणवादी टकराहट का एक आधुनिक रूप है। आश्चर्य की बात है कि यह सब हमारे देश में इक्कीसवीं शताब्दी में हो रहा है।

पुस्तक : चार्वाक के वारिस
लेखक : सुभाष गाताडे
प्रकाशक : ऑथर्स प्राईड पब्लिशर प्रा. लि., दिल्ली
पृष्ठ : 314 मूल्य : 399/-

ईश्वर की अवधारणा को प्रश्नांकित करने वाले, धर्म के बोझ से मानवीय जीवन की मुक्ति की बात करने वाले ग्रीक दार्शनिकों की तुलना भारत के चार्वाक से भी की जाती है। ग्रीक दार्शनिकों की तरह चार्वाक के विचार भी घृणा के शिकार हो रहे हैं। अगर डेमोक्रेट्स की रचनाएं गायब कर दी गईं, उसी तरह भारत में चार्वाक की रचनाएं एवं उसकी धारा के ग्रंथ भी नष्ट कर दिए गए। चार्वाक का एक श्लोक ही चर्चा में रखा गया है, जिसमें वे जब तक जीना चाहिए, सुख से जीना चाहिए कहते हैं। चार्वाक के अन्य श्लोकों की चर्चा नहीं की जाती है। चार्वाक के सिद्धांतों का निचोड़ संक्षेप में इस प्रकार है- पवित्र साहित्य को असत्य मानना चाहिए, कोई भगवान नहीं होता, कोई आत्मा नहीं होती, सभी भौतिक तत्वों से संचालित है, आदि। चार्वाक यह भी कहते हैं कि धूर्त धर्मशास्त्रियों द्वारा दिखाई गई झूठी आशाओं का शिकार होने वाले मूर्ख प्राणी हैं।

भारतीय दर्शन में आध्यात्मिकता का प्रधान स्वर में लेखक प्रश्न उठाता है कि भारतीय संस्कृति की एक खास किस्म की छवि ही क्यों प्रचलित हुई? इसका एक सिरा उप-निवेशवादी विचारकों की रणनीति से और दूसरा सिरा घृणा एवं नफरत पर टिके अपने एजेंडे को आगे लेकर बढ़ रही ताकतों ने अपने फौरी सियासी मकसद को पूरा करने के लिए अतीत की खास तरीके की व्याख्या शुरू की है। ब्राह्मणवादी संस्कृति के विस्तार ने भारत में वैज्ञानिक कामकाज एवं आयुर्वेद चिकित्सा के अनुसंधान को बाधित किया। भारत में आयुर्वेद के उदय का कालखंड ईसापूर्व सातवीं-छठवीं सदी है, जिसका स्वर्णिमकाल बौद्ध मौर्य साम्राज्य में दिखाई देता है। बौद्ध धर्म की अवनति के बाद वैदिक हिन्दू धर्म के उभार के साथ उसकी लोकप्रियता में कमी आ जाती है। इसका

VARTA SEPTEMBER-2020 ISSUE.qxd 9/21/2020 7:38 AM Page 24

एक प्रमुख कारण छुआछूत था। इसके कारण वैज्ञानिक सोच आगे नहीं बढ़ी।

भारत में मायावाद के बढ़ते प्रभाव ने न केवल चिकित्सा विज्ञान को पीछे धकेला, उसी तर्ज पर खगोल विज्ञान की प्रगति को नुकसान पहुंचाया। भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बातें करने वालों पर ब्राह्मणों के मायाजाल का शिकंजा कस रहा था। उसी समय इतावली दार्शनिक ब्रूनो को 16 फरवरी 1600 को चर्च के आदेश पर रोम के चौराहे पर जिन्दा जला दिया गया था। ऐसी शहादतों ने ही यूरोप में प्राकृतिक-विज्ञान और आधुनिक दर्शन को आगे बढ़ाया था। आपो दीपो भव आलेख में स्वामी दयानंद, विवेकानंद एवं महात्मा ज्योतिबा फुले के बहाने कुछ बातें रखी गई हैं। इन्होंने धर्म के मायाजाल का शिकंजा तोड़ने के अभियान चलाकर एक नई प्रगतिवादी लहर पैदा की थी।

पुस्तक के दूसरे भाग में दो आलेख हैं 'नौजवानों से दो बातें' और 'खुदा हमें इन विश्वगुरुओं से बचाओ'। इसमें लेखक ने नौजवानों की शिक्षा और जाति से संबंधित कई प्रश्न उठाए हैं। इक्कीसवीं सदी में भारत के आर्थिक महाशक्ति बनने की बात अक्सर चलती है। सवाल उठता है कि समाज जो इस कदर सम्प्रदाय, जाति आदि के विवादों में उलझा हुआ हो, जहां पर एक-दूसरे को नीचा समझने वाली चार हजार से अधिक जातियां-उपजातियां हों, जहां प्रेम जैसे बेहद निजी एवं आत्मीय रिश्ते पर समाज एवं परिवार की पहरेदारी परम्पराओं के नाम पर आज भी मौजूद हो, वह देश कैसे आर्थिक महाशक्ति बनेगा?

सुभाष गाताडे मेगास्थनिस, अल बरुनी, एडमंड बुर्के आदि के माध्यम से भारतीय समाज का मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं। इसे पढ़कर समझ आता है कि उस समय भी जाति व्यवस्था में समाज बंधा हुआ है। हम अपनी संस्कृति की महानता की बातें करते हुए आत्मतुष्ट रहते हैं परंतु आज भी विश्व के विद्वानों को हमारी सामाजिक व्यवस्था आश्चर्यजनक लगती है। सुहास चक्रवर्ती ने अपनी किताब 'राज सिन्ड्रोम' में लिखा है कि 'उपनिवेशवाद की विरासत ने दोयम दर्जे के भारतीयों की एक ऐसी राष्ट्रीय पहचान को मजबूती प्रदान की, जो आज भी श्वेत रंग को अश्वेत रंग से ऊंचा मानने के जरिए अभिव्यक्त होती है।' इस संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर के विचारों का काफी विस्तार से पुस्तक में स्थान मिला है।

पुस्तक का तीसरा भाग हेडगेवार-गोलवलकर बनाम अम्बेडकर, नेहरू अम्बेडकर बहुसंख्यकवाद की चुनौती तथा पहचान की राजनीति और वाम का भविष्य के तीन आलेखों में प्रस्तुत है। नेहरू, अम्बेडकर और बहुसंख्यकवाद की चुनौती में उठाए गए प्रश्न देश के समकालीन प्रश्न हैं। आज हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या

उस समय नेहरू कितने सही थे क्योंकि आज हम बहुसंख्यकवाद समुदाय की साम्प्रदायिकता को उसके राष्ट्रवाद के तौर पर देखने को अभिशप्त हैं। अम्बेडकर इस संबंध में कहते हैं कि 'अगर हिन्दू राज हकीकत बनता है तो यह इस देश के लिए सबसे बड़ी तबाही का दिन होगा।

और चुनौती बहुसंख्यकवाद ही है। हमारे देश में बहुमत की सरकार की नहीं बहुसंख्यकों की सरकार की बात होने लगी है। इसी से हिन्दू और मुस्लिम में बढ़ती साम्प्रदायिकता और कटुता को समझा जा सकता है। बहुमत को नकारने का अर्थ भारतीय संविधान को नकारना है। हम यह नारा सुनते हैं कि 'जो हिन्दू हित की बात करेगा वही देश पर राज करेगा।' यही बहुसंख्यकवादियों की राजनीतिक चालाकी ही है कि उन्होंने 'बहुमत' के राज के स्थान पर 'बहुसंख्यकवाद' के हितों का नारा लगाना शुरू कर दिया। इस देश में बहुसंख्यकों के राज का सपना दिखाकर अल्पसंख्यकों के विरुद्ध जहर फैलाया जा रहा है। जवाहर लाल नेहरू ने 1950 के दशक में बहुसंख्यकवाद के खतरे को पहचान लिया था। नेहरू के अनुसार 'जब अल्पसंख्यक समुदाय साम्प्रदायिक होता है, तो आप इसे देख सकते हैं और समझ सकते हैं, मगर बहुसंख्यकवाद समुदाय की साम्प्रदायिकता को राष्ट्रवाद के तौर पर समझे जाने की स्थिति आमतौर पर रहती है।'

उस समय नेहरू कितने सही थे क्योंकि आज हम बहुसंख्यकवाद समुदाय की साम्प्रदायिकता को उसके राष्ट्रवाद के तौर पर देखने को अभिशप्त हैं। अम्बेडकर इस संबंध में कहते हैं कि 'अगर हिन्दू राज हकीकत बनता है तो यह इस देश के लिए सबसे बड़ी तबाही का दिन होगा।' हमारा देश एक उदारवादी जनतंत्र से एक किस्म के बहुसंख्यकवादी जनतंत्र में रूपांतरित होता जा रहा है। भारतीय राजनीति के केंद्र में हिन्दुत्व वर्चस्ववादी ताकतों के साथ इस प्रक्रिया में तेजी आई है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने जनता को इस बात के लिए आगाह किया था कि अगर वह सचेत नहीं रही तो भारत 'हिन्दू-पाकिस्तान' बन सकता है। इस पुस्तक के लेखक ने संविधान सभा को लेकर डॉ. अम्बेडकर के सुझावों एवं कार्यों का विस्तृत लेखा-जोखा दिया है। इसी तरह 'हिन्दू कोड बिल' अम्बेडकर द्वारा नेहरू कैबिनेट से इस्तीफा देने का प्रमुख कारण बना था। इस बिल के विरोध में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने प्रदर्शन किए थे।

डॉ. अम्बेडकर ने 1949 को संविधान सभा में अपने भाषण के दौरान तीन चेतावनियां दी थी- 1. संविधान पद्धतियों का पालन। 2. अपनी आजादियों को किसी महान शख्स के चरणों में गिरनी न रखना। 3. राजनीतिक जनतंत्र को सामाजिक जनतंत्र बनाना। आज हम देख रहे हैं कि देश अम्बेडकर की इन चेतावनियों से जूझ रहा है। देश के समक्ष सबसे बड़ी चेतावनी किसी 'महान' शख्स के चरणों में अपनी आजादियों को गिरवी

रखने का खतरा है। इसीलिए देश के पूंजीवादी घरानों के मीडिया समूह 'महान-शख्स' को रचने के षड्यंत्र में शामिल है।

डॉ. अम्बेडकर ने चेतावनी दी थी कि हमें नायक-पूजा बचना होगा। उनके अनुसार 'यह चेतावनी किसी अन्य देश की तुलना में भारत के संदर्भ में जरूरी है क्योंकि यहां भारत में, भक्ति या जिसे आप भक्ति का रास्ता या नायक पूजा का मार्ग कह सकते हैं, वह राजनीति में इस कदर भूमिका निभाती है, जैसा दुनिया के किसी अन्य देश में दिखाई नहीं देता। धर्म में भक्ति भले ही आत्मा के मोक्ष/मुक्ति का रास्ता खोल दे, मगर राजनीति में भक्ति या नायक पूजा अवनति/पतन/अधोगति का और अंततः तानाशाही का पक्का मार्ग है।' हेडगेवार-गोलवलकर बनाम अम्बेडकर आलेख भाजपा के प्रवक्ता डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा लिखित तीन किताबों पर चर्चा की गई है। इसमें डॉ. अम्बेडकर समता की बात और हेडगेवार समरसता की बात करते हैं। इसके लिए दोनों ने भिन्न मार्ग अपनाए हैं।

इस आलेख में कई प्रश्न उठाए गए हैं, जिन्हें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संगठन तो समय-समय पर प्रस्तुत किया जाता है। अस्पृश्यता का जन्म इस्लाम आगमन के बाद, हिन्दू चर्मकार जाति-एक स्वर्णिम गौरवशाली राजवंशीय इतिहास, संत रविदास का हिन्दुत्वकरण, जातिप्रथा के उद्गम पर चंद बातें और मनु के कानून के उपशीर्षकों में विभाजित है। डॉ. अम्बेडकर के विचारों को अछूत कौन और कैसे आलेख में विस्तारपूर्वक चर्चा है। पुस्तक के तीसरे भाग का अंतिम आलेख 'पहचान की राजनीति और वाम का भविष्य' है। इसमें पूरी दुनिया में हुए राजनीतिक और सामाजिक बदलावों में वाम की भूमिका और भविष्य पर एक संक्षिप्त नोट है। यह स्पष्ट रूप से कुछ भी सिद्ध नहीं करता है। लेखक सुभाष गाताडे कई कार्यक्रमों का लेखा-जोखा देते हुए पूंजीवाद और साम्यवाद की उभरती कई प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है पर वे वाम के भविष्य को लेकर कोई नई तस्वीर नहीं बनाते हैं। लगता है लेखक अपने पास उपलब्ध सामग्री को आलेख पर चस्पा करता जा रहा है।

पुस्तक का अंतिम और चौथे भाग में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकत्रयी अंधविश्वास उन्मूलन-विचार (पहला भाग) और अंधविश्वास उन्मूलन-सिद्धांत (तीसरा भाग) जिनके रचयिता डॉ. दाभोलकर हैं, की समीक्षा प्रस्तुत है। इन पुस्तकों से यह विचार स्पष्ट उभरता है कि धर्म हमको आज्ञा देता है कि 'विश्व का राज मैं जान चुका हूं अब केवल मेरी आज्ञा का पालन करो' इसके बरक्स वैज्ञानिक दृष्टिकोण वस्तु अथवा घटनाओं को जांचने की तथा अज्ञात तत्व की पड़ताल जारी रखने की बात करता है।

ब्राह्मणवादी संस्कृति के विस्तार ने भारत में वैज्ञानिक कामकाज एवं आयुर्वेद चिकित्सा के अनुसंधान को बाधित किया। भारत में आयुर्वेद के उदय का कालखंड ईसापूर्व सातवीं-छठवीं सदी है, जिसका स्वर्णिमकाल बौद्ध मौर्य साम्राज्य में दिखाई देता है।

डॉ. दाभोलकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सरल परिभाषा देते हैं- किसी घटना की पृष्ठभूमि में उपस्थित कार्य-कारण को जान लेना अथवा दो भिन्न घटनाओं के बीच के पूरक संबंधों को जान लेना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। वे चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि 'किसी भी ग्रंथ में लिखे हुए अथवा किसी अधिकारी व्यक्ति के कहे हुए वचन को सच मानना गलत है क्योंकि अंतिम सत्य का निष्कर्ष प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा निरीक्षण होता है। वे आगे कहते हैं कि यूरोप में वैज्ञानिक अपनी बात को समाज के गले बांधने के लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगा देते थे। भारत में अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण तो सुविधा से स्वीकार किया गया परंतु इसके लिए आवश्यक निडर मानसिकता नहीं पनप पाई।'

प्रसिद्ध मराठी लेखक बाबुराव बागुल का वक्तव्य हमारे पूरे समाज की समीक्षा का आधारभूत पाठ बन पड़ा है। यह वक्तव्य इस पूरी पुस्तक का सारतत्व है- 'देवताओं मंदिरों और ऋषियों का यह देश! इसलिए क्या यहां सब कुछ अमर है? वर्ण अमर, जाति अमर, अस्पृश्यता अमर!'...युग के बाद युग आए! बड़े-बड़े चक्रवर्ती आए! दार्शनिक आए! फिर भी अस्पृश्यता, विषमता अमर है...यह कैसे हो गया? किसी भी महाकवि, पंडित, दार्शनिक, सत्ताधारी संत की आंखों में यह अमानुषिक व्यवस्था चुभी क्यों नहीं? बुद्धिजीवियों, संतों और सामर्थ्यवानों का यह अंधापन, यह संवेदनशून्यता दुनियाभर में खोजने पर भी नहीं मिलेगी! इससे एक ही अर्थ निकलता है कि यह व्यवस्था बुद्धिजीवियों, संतों और राज करने वालों को मंजूर थी! यानी इस व्यवस्था को बनाने और उसे बनाए रखने में बुद्धिजीवियों और शासकों का हाथ है।

उल्लेखनीय है कि प्रत्येक आलेख के अंत में दी गई संदर्भ सूची पुस्तक को ऐतिहासिक दस्तावेज बनाती है। इस पुस्तक के संदर्भों के आधार पर इस विचारधारा को आगे बढ़ाया जा सकता है। डॉ. दाभोलकर कहते हैं कि जिस देश में चार्वाक, लोकायत, बुद्ध की परंपरा थी, वहां 11-12वीं सदी से आगे सात-आठ सौ साल तक लोग प्रश्न पूछना क्यों भूल गए?

लेखक ने परिशिष्ट के रूप में भी कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों का अत्यंत संक्षेप में परिचय भी दिया है। यह परिशिष्ट अत्यंत महत्वपूर्ण बन पड़ा है। हमारे देश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विवेक को आंदोलित करने वाली पुस्तकें बहुत कम चर्चा में रही है। इसलिए चार्वाक के वारिसों के लिए तर्कसंगत सोच को विकसित करने वाली पुस्तकों से परिचय कराना भी एक सक्रिय किस्म का मूल्य-परिवर्तन का कर्मशील संवाद है। ■

यूपी में शिक्षक भर्ती में भ्रष्टाचार के खिलाफ वियुस का पोस्टर अभियान

विद्यार्थी युवजन सभा और न्याय मोर्चा ने उत्तर प्रदेश में 69,000 शिक्षकों की भर्ती में हुए भ्रष्टाचार के खिलाफ शिक्षक भर्ती परीक्षा रद्द करने व सीबीआई जांच कराने की मांग की और लॉकडाउन के दौरान पोस्टर प्रदर्शन किया।

वियुस और न्याय मोर्चा मऊ जिले के दरियाबाद, इटौरा, बीबीपुर, सद्दोपर, अकोल्ही, मुबारकपुर, चौथीमी, मांदी, सिपाह और आजमगढ़ जिले के अजमतगढ़, जीयनपुर, लाटघाट, बलपुर में व्यापक स्तर पर पोस्टर अभियान चलाया। वियुस ने 14 जुलाई की विज्ञप्ति में कहा है कि उत्तर प्रदेश में भ्रष्टाचार खत्म कर परीक्षा रद्द करने व सीबीआई जांच कराने तक पोस्टर अभियान जारी रहेगा।

वियुस के संयोजक शैलेश कुमार ने विज्ञप्ति में बताया है कि न्याय मोर्चा एवं वियुस से जुड़े छात्र इस पोस्टर को प्रदेश के सभी जिलों में लगाने की योजना के साथ काम कर रहे हैं। विद्यार्थी युवजन सभा के जिला संयोजक मुंशी कुमार ने कहा कि सरकार अभी तक 69,000 शिक्षक भर्ती में भ्रष्टाचार के आरोपियों को गिरफ्तार नहीं कर पाई है। इसका मतलब साफ हैं कि सरकार भर्ती में भ्रष्टाचार के मामले को दबाना चाहती है, जो गरीब-किसान-मजदूर परिवार से आने वाले छात्रों के साथ अन्याय है। मंडल प्रभारी राणा प्रताप चौहान ने भ्रष्टाचार के खिलाफ सीबीआई जांच व परीक्षा रद्द की मांग करते हुए पोस्टर जारी किया और जगह-जगह पर पोस्टर लगाकर आंदोलन को व्यापक करने की बात कही। वियुस की सदस्य अर्चना मौर्य ने कहा कि 69,000 शिक्षक भर्ती परीक्षा में व्यापक स्तर पर भ्रष्टाचार हुआ है जो जगजाहिर है फिर भी उत्तर प्रदेश की मौजूदा सरकार उसे दबाना और तानाशाही तरीके से भर्ती को पूरा करना चाहती हैं, जिसका हम पुरजोर विरोध करते हैं। विद्यार्थी युवजन सभा के संयोजक एवं न्याय मोर्चा संयोजन समिति के सदस्य शैलेश कुमार ने कहा कि शिक्षक भर्ती परीक्षा का पर्चा परीक्षा से 1 दिन पहले ही सोशल मीडिया पर वायरल हो गया था। रोज कोई ना कोई पकड़ा जा रहा था, लेकिन जैसे ही सरकार को लगा कि अब उसके बड़े-बड़े मंत्री और विधायक एवं अधिकारी का नाम खुलेगा वह पकड़े जाएंगे तो उसने जांच को दबाने की कोशिश की और उसमें लीपापोती कर रही है।

पोस्टर जारी करने व लगाने में विद्यार्थी युवजन सभा के अनुराधा मौर्य, सोहन चौहान, सचिन साहनी, अमरेश, आदित्य, अंकिता, सुमन, चंद्रेश मौर्य, रोहित कुमार, मधु और न्याय मोर्चा के साथी भी शामिल रहे।

पर्यावरण रक्षकों को नमन

2019 में पूरी दुनिया में जल, जंगल, जमीन, को बचाने में 212 लोगों की जाने गईं। यह बात ग्लोबल विटनेस नामक संस्था द्वारा जारी एक रिपोर्ट में बताई गई है। सबसे ज्यादा दो तिहाई से अधिक हत्याएं दक्षिण अमेरिका में हुई। कोलंबिया में 64, फिलीपींस में 43, ब्राजील में 24, मैक्सिको में 18, होंडुरास में 14, ग्वाटेमाला में 12, भारत में भी 6 लोग शहीद हुए। अफ्रीका महादीप में 7 मामले सामने आए। लेकिन जानकारों का कहना है कि अफ्रीका में सभी मामले दर्ज नहीं किए जाते। यूरोप (रोमानिया) में केवल 2 लोगों की जान गई। साथ ही यह बात भी महत्वपूर्ण है कि हर 10 हत्याओं में 1 महिला है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि यदि घर का कोई सदस्य पर्यावरण संरक्षण का काम कर रहा है तो भी घर की महिलाओं पर हमले, यौन हिंसा की आशंका बनी रहती है। क्षेत्र के हिसाब से देखें तो खनन में 50, जंगलो को बचाने में 24, कृषि और उससे जुड़े व्यवसायों में 34 (इसमें 85% हत्याएं एशिया के देशों में हुईं।) हत्याएं हुई हैं। इन हमलों में से करीब 40% हमले आदिवासियों/मूलवासियों पर ही हुए, जो कि सीधे तौर पर जल, जंगल, जमीन से जुड़े होते हैं और अब इनकी आबादी पूरी दुनिया की जनसंख्या की केवल 5% ही है। जल, जंगल, जमीन और पर्यावरण बचाने के लिए संघर्ष कर रहे इन जैसे सभी पर्यावरण रक्षकों को संरक्षण देने और बचाने की जिम्मेदारी अब समाज के उन साथियों को करनी होगी, जो नदी, तालाब, जंगल, जमीन बचाने में विश्वास करते हैं और मानते है कि पूंजीवाद/ साम्राज्यवाद ने सिर्फ मनुष्य का ही शोषण ही नहीं किया, प्रकृति का भी शोषण किया है। कंपनियों, सरकारों और नामी गिरामी राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं पर भरोसा करना, धोखा खाना होगा।

–जलधारा अभियान, जयपुर

जम्मू-कश्मीर में नदी संपदा की लूट

(जम्मू कश्मीर से अनुच्छेद 370 और 35ए हटाकर उसका स्टेटस बदले एक साल से अधिक हो गया। अब शेष भारत के लोग/कंपनियां वहां जमीन, जायदाद खरीद सकती हैं। वहां व्यापारिक, आर्थिक, खनन कार्य भी कर सकती हैं। इस बदलाव के बाद वहां की नदियों का किस तरह शोषण हो रहा और उसमें सरकार-प्रशासन किस तरह से मददगार साबित हो रहे हैं, इस आलेख से उसका सिर्फ कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है। इसमें दिए गए तथ्यों और जानकारियों के लिए जलधारा अभियान द थर्डपोल.नेट और श्री अतहर परवेज का आभार व्यक्त करता है।)

पिछले कुछ समय से खबर आ रही है कि जम्मू-कश्मीर की नदियों में से रेत, बजरी, बॉल्डर्स का गैर कानूनी खनन खूब हो रहा है। जम्मू-कश्मीर सरकार द्वारा नदियों के पेटे से रेत, बजरी निकालने के लिए ऑनलाइन नीलामी के कुछ दिन बाद ही ठेके प्राप्त करने वाली सफल कंपनियों ने बिना किसी पर्यावरण अनुमति के ही रेत, बजरी का खनन शुरू कर दिया। खासकर झेलम और उसकी सहायक नदियों में- जबकि वहां के नागरिकों और विशेषज्ञों के अनुसार इसे गैर-कानूनी करार दिया जाना चाहिए। लेकिन ऐसा न करके, सरकार ने 30 जुलाई 2020 को पर्यावरण मंजूरी देने में तेजी लाने के आदेश निकाले हैं। नया आदेश जारी करने का

कारण विकास कार्यों के लिए जरूरी साम्रग्री की कमी आ जाना, जो कि कोविड-19 महामारी का मुकाबला करने के लिए अति आवश्यक है, बताया गया। सिर्फ इतना ही नहीं, इस आदेश में सरकार ने (ढील देते हुए) जो लिखा उसका सारांश है- कि पहले वाले अलॉटी को जिन शर्तों पर अनुमति दी गई थी, वही अनुमति उन्ही शर्तों के साथ नए अलॉटी को ट्रांसफर मान लेनी चाहिए और यह नया अलॉटी इस अनुमति के साथ, नई अनुमति मिलने तक या फिर 2 साल तक खनन कार्य कर सकता है। इस तरह से सरकार अपने ही पहले दिए आदेशों के साथ-साथ अपने ही संस्थानों के विशेषज्ञों द्वारा दी गईं सलाहों के विरोध में आ गई। ध्यान देने की बात है कि जून 2020 में ही सरकारी संस्था जम्मू-कश्मीर एक्सपर्ट एप्रेजल कमेटी ने रेत, बजरी के गैर-कानूनी खनन होने की चेतावनी दी थी। नियमों के मुताबिक यदि खनन का एरिया 5 हेक्टेयर से ज्यादा है तो पर्यावरणीय अनुमति के लिए जन सुनवाई भी जरूरी है। जबकि 70%से ज्यादा सफल नीलामी ठेके 5 एकड़ से ऊपर के हैं। लेकिन लोगों का कहना है कि शायद ही कोई जन सुनवाई हुई हो।

जम्मू-कश्मीर एनवायरनमेंट अपरेज़मेंट कमेटी ने दिसम्बर 2019 में सरकार को यह सलाह दी थी कि झेलम और उसकी सहायक नदियों में तब तक कोई खनन कार्य नहीं करवाना चाहिए जब तक कि वैज्ञनिक आधार पर बेसिन वाइज यह पता नहीं लग जाए कि कौन-कौन से एरिया खनन के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं। और यह सब जल्दबाजी में नहीं किया जा सकता। लेकिन इस सलाह के बावजूद झेलम और उसकी सहायक नदियों में से रेत/बजरी निकालने के लिए पुलवामा, श्रीनगर, बारामूला जिले की नदियों में 72 करोड़ (720 मिलियन) रुपये के ठेके 5 साल के लिए दे दिए। जम्मू-कश्मीर के इरिगेशन और फ्लड कंट्रोल विभाग के इंजीनियर्स का कहना है कि जब नदियों के पेटे में से रेत, बजरी का बड़ी मात्रा में खनन होगा तो नदी के बहाव की वेलोसिटी (वेग) बढ़ जाएगी। यह बड़ी मात्रा में बाढ़ लाएगी और इससे आसपास की नदियों, तालाबों में गाद का जमाव भी बढ़ेगा। इस तरह बाढ़ नियंत्रण प्रणाली वहां के पर्यावरण, पारिस्थितिकी और निवासियों को प्रभावित करेगा। इस बार की नीलामी-21 दिसंबर 2019 को ऑनलाइन शुरू की गई। जबकि राज्य में-अगस्त 2019 के पहले सप्ताह से जनवरी 2020 के तीसरे सप्ताह तक इंटरनेट सेवाएं पूरी तरह बंद थी। बाद में कम रफ्तार वाली 2जी सेवा शुरू की गई। यहां यह जानना भी महत्पूर्ण है कि नीलामी में इस बार राज्य से बाहर की कंपनियों ने भी भाग लिया और इस बार नीलामी में सफल अधिकांश कंपनियां राज्य से बाहर की ही हैं। श्रीनगर में झेलम नदी के सभी 10 ब्लॉक्स, बाहर की कंपनियों को पांच करोड़ रुपये में मिले। पुलवामा में कुल 36 ब्लॉक्स में से 14 (40%) राज्य की कंपिनयों ने लिए और 22 ब्लॉक्स बाहर की कंपनियों ने लिए। पूरे जम्मू-कश्मीर में राज्य से बाहर की कंपनियों ने 48 करोड़ के ब्लॉक्स लिए। 10 फरवरी 2020 को हुई नीलामी में 28 में से 19 ब्लॉक बाहर की कंपनियों ने 19 करोड़ रुपये में 5 साल के लिए ले लिए।

स्थानीय ठेकेदारों का कहना है- यह बहुत ही अन्यायपूर्ण बात है कि हमारे प्राकृतिक संसाधनों को नेटबंदी के दिनों में इस तरह ऑनलाइन बिकवाली के लिए डाल दिया गया। हम किसी भी हाल में बाहर की कंपनियों का मुकाबला नहीं कर पाएंगे और वे हमारे संसाधनों को बाहर ले जाएंगे। इस तरह यह स्थानीय निवासियों के लिए रोजगार का भयंकर संकट पैदा कर सकता है। इससे घाटी में गरीबी गहराएगी, पर्यावरण संकट बढ़ेगा और सामाजिक-राजनीतिक विघटन में तेजी आ सकती है। क्योंकि दूरदराज की कंपनियो में स्थानीय जरूरतों को पूरा करने की इच्छा ही नहीं होती।

-जलधारा अभियान, जयपुर

नई शिक्षा नीति-2020 को शिक्षकों ने खारिज किया

नई दिल्ली। अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच की ओर से 4 सितंबर को नई शिक्षा नीति-2020 पर विचार करने के लिए शिक्षकों की ऑनलाइन बैठक आयोजित की गई। इसमें शिक्षकों ने नई शिक्षा नीति को गरीब-पिछड़ा विरोधी बताते हुए इसे खारिज करने की मांग की। इस बैठक में सर्वसम्मति से राय बनी कि-

केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा पारित की गई नई शिक्षा नीति-2020 के लागू होने पर 85 से 90 फीसदी बच्चे बेहतरीन पूर्णकालिक तालीम से बाहर हो जाएंगे और या तो निचले दर्जे की तालीम पाएंगे या बचपन से ही कम पैसे वाली मजदूरी करने या पारिवारिक धंधों में लग जाएंगे। इससे असल में राष्ट्र की तरक्की को नुकसान होगा।

हमारी आबादी में अनुसूचित जाति-जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग, धार्मिक एवं भाषिक अल्पसंख्यक, शहरी व ग्रामीण गरीब, सामाजिक रूप से वंचित समूह और स्त्रियां शामिल है। शिक्षा नीति-2020 में वंचित अनुसूचित जाति-जनजाति और अन्य पिछड़े तबकों के लिए आरक्षण का कोई जिक्र नहीं है। यह न केवल सामाजिक न्याय की व्यवस्था को कमजोर कर देगी, बल्कि लोक शिक्षा व्यवस्था को ही तहस-नहस कर देगी और शिक्षा के खुलेआम व्यापार को खासा बढ़ावा देगी। व्यावसायिक शिक्षा के नाम पर यह शिक्षा को केवल कारीगरी पढ़ाने तक सीमित करेगी और हर विषय में दो तरह के पाठ्यक्रम को लागू करेगी। इससे बच्चे से मौजूदा हक छीन लिया जाएगा कि वह कम से कम पांच सालों तक विज्ञान, गणित, समाज-विज्ञान और भाषाओं की तालीम ले सके।

शिक्षा नीति-2020 शिक्षकों तथा शैक्षणिक संस्थाओं की अकादमिक स्वायत्ता छीन लेगी। यह नीति राज्य सरकारों के जरूरी अकादमिक और शैक्षणिक फैसले लेने के अधिकार को खत्म करके संविधान के संघात्मक ढांचे को ही खत्म कर देगी। जब शिक्षा-व्यवस्था पर इस तरह का गलत एजेंडा थोपा जा रहा हो तो भारत के नागरिक, शिक्षक और बुद्धिजीवी-वर्ग होने के नाते इस पर अपनी राय प्रकट करना अपनी जिम्मेदारी समझते हैं।

शिक्षा नीति-2020 का दावा है कि बुनियादी सुधारों के केंद्र में अध्यापकों को रखा गया है। उनकी आजीविका, आत्मसम्मान, गरिमा और स्वायत्तता को सुनिश्चित किया गया है, ताकि बेहतर तालीम मुमकिन हो। पर ऐसा हो पाने के लिए जो ज्वलंत मुद्दे हैं, जैसे- ठेके और तदर्थ शिक्षकों, 200 पॉइंट रोस्टर, पेंशन, आंगनवाड़ी/ ईसीसीई कार्यकर्ताओं की नियमितीकरण और महिला शिक्षकों के मातृत्व अवकाश आदि पर यह नीति खामोश है। अगर शिक्षा नीति-2020 लागू होती है तो आंगनवाड़ी/ ईसीसीई कार्यकर्ताओं की स्थिति और कमजोर हो जाएगी।

शिक्षा नीति- 2020 नियोक्ताओं को प्रोबेशन पीरियड बढ़ाने की छूट देती है और इससे अध्यापकों का शोषण बढ़ेगा। इसमें यह प्रावधान है कि प्रारंभिक स्तर से लेकर स्कूली तालीम के विविध स्तरों पर बड़े पैमाने पर 'स्वैच्छिक कार्यकर्ता', 'सामाजिक कार्यकर्ता', सलाहकार, स्थानीय सम्मानित शख्सियत, स्कूलों के पुराने छात्र, सक्रिय और स्वस्थ वरिष्ठ-नागरिक और समाज में सार्वजनिक मुद्दों में रुचि रखने वाले लोगों को अनौपचारिक अपरिभाषित भूमिका में शामिल किया जाएगा; ताकि इस तरह तालीम में वैचारिक एजेंडा बढ़ाने के लिए पिछले दरवाजे से अपने 'कैडर' की भर्ती की जा सके।

अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच ने सीबीएसई पाठ्यक्रम से पाठों को हटाने की निंदा की

नई दिल्ली। भारत सरकार ने शिक्षा प्रणाली पर दोतरफा खतरनाक हमला बोल दिया है। एक ओर, 24 जून 2020 को उसने प्रारंभिक बालपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) से बारहवीं कक्षा तक की स्कूली शिक्षा की पूरी प्रणाली की संरचना, प्रशिक्षण और प्रशासन की रूपरेखा तैयार करने का विशेषाधिकार विश्व बैंक को सौंप दिया है। इससे संविधान द्वारा प्रदत्त शिक्षा की स्वतंत्र, आवश्यक सार्वजनिक प्रणाली के रूप में इसे मजबूत और विकसित करने के बजाय शिक्षा को एक निजीकृत, वाणिज्यिक और निगमीकृत प्रणाली में रूपांतरित करने का पथ प्रशस्त हो गया है।

अब, 7 जुलाई 2020 को इसने सीबीएसई की शैक्षणिक वर्ष 2020-21 के लिए माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम से कई महत्वपूर्ण पाठों को हटा दिया है। इन पाठों में महत्वपूर्ण आंदोलनों, घटनाओं, अवधारणाओं और मूल्यों का वर्णन किया गया था, जो आधुनिक भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन के चरित्र और लक्ष्यों को समझने के लिए महत्वपूर्ण थे। अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच सीबीएसई पाठ्यक्रम से इन पाठों को हटाने और अन्य बदलावों की निंदा करता है।

किसानों के मुद्दों पर अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति का लाइव कार्यक्रम

अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति (एआईकेएससीसी) द्वारा 31 जुलाई को ऑनलाइन फेसबुक कार्यक्रम 'किसानों का यह ऐलान, लेकर रहेंगे पूरा दाम' विषय पर आयोजित किया गया। इसे अब तक विभिन्न फेसबुक पेजों पर 55 हज़ार से अधिक किसानों और समर्थकों द्वारा देखा गया।

कार्यक्रम को संबोधित करते हुए महाराष्ट्र के 'स्वाभिमानी शेतकरी संगठन' के अध्यक्ष पूर्व सांसद राजू शेट्टी ने कहा कि उन्होंने किसानों और विशेषज्ञों के साथ मिलकर तैयार किया गया कृषि उपज लाभकारी विधेयक लोकसभा में पेश किया था, जो कि लोकसभा में पास नहीं हो सका। उन्होंने कहा कि यदि राज्य सरकार द्वारा दूध पर 5 रुपए प्रति लीटर की सब्सिडी नहीं दी गई तथा केंद्र सरकार ने दूध पाउडर के आयात तथा दुग्ध पदार्थों पर जीएसटी समाप्त नहीं किया तो बड़ा आंदोलन किया जाएगा। उन्होंने देश के दुग्ध उत्पादक किसानों से इस आंदोलन में शामिल होने की अपील की।

गन्ना किसानों को गन्ने के रेट में गत 2 वर्षों से कोई एमआरपी नहीं बढ़ाने पर आपत्ति दर्ज करते हुए उन्होंने कहा कि उर्वरक और डीजल का दाम लगातार बढ़ रहा है ऐसी स्थिति में किसानों को भुगतान टुकड़ों (किस्तों) में देने की तथा ब्याज प्रतिशत कम करने की साजिश की जा रही है, जिसे एआईकेएससीसी कभी बर्दाश्त नहीं करेगा। हरियाणा से 'अखिल भारतीय किसान महासभा' के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष प्रेम सिंह गहलावत ने कहा कि हरियाणा में 10 किसान संगठनों ने 23 जुलाई को मीटिंग कर तय किया है कि हम अपनी फसल का पूरा दाम लेकर रहेंगे। एमएसपी लागू करवाएंगे। उन्होंने कहा कि अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं पर अमेरिका का प्रभाव है तथा अमेरिका की कंपनियां दुनियाभर की जमीन को कब्जाना चाहती है। उन्होंने कहा कि हम देश में कॉरपोरेट को खेती नहीं करने देंगे।

पश्चिम बंगाल के एआईकेएससीसी इकाई के संयोजक कार्तिक पाल ने कहा कि कुछ सुनिश्चित फल सब्जियों को ही नहीं किसानों की सम्पूर्ण उपज और सब्जियों की भी एमएसपी पर खरीद की जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि कॉन्ट्रैक्ट खेती संबंधित कानून देश में लागू हुआ तो किसानों के पास जमीन नहीं बचेगी, कॉरपोरेट के हाथ में जमीन होगी, जिससे वे कृषि उत्पादों को विदेशों में निर्यात करेंगे। उत्तराखंड से 'तराई किसान संगठन' के अध्यक्ष तेजिंदर सिंह विर्क ने कहा कि हम जब तक एकजुट होकर एमएसपी की मांग नहीं करेंगे तब तक सरकार नहीं देगी। मध्य प्रदेश से 'अखिल भारतीय किसान सभा' के प्रदेश अध्यक्ष जसविंदर सिंह ने कहा कि जब किसानों की अप्रैल महीने में अपनी उपज बेचने की बारी आई तब उस समय सरकार गिरा दी गई और लॉकडाउन लगने से एक महीने तक एक ही व्यक्ति ने सरकार चलाई। उन्होंने

कहा कि मध्य प्रदेश में खाद की कालाबाजारी और नकली खाद बेचने का धंधा चल रहा है। मध्य प्रदेश से 'राष्ट्रीय किसान मजदूर संगठन' के अध्यक्ष राहुल राज ने कृषि अध्यादेशों का उल्लेख करते हुए कहा कि वर्तमान परिवेश में मंडियों के निजीकरण से किसान को घाटा हो रहा है। कार्यक्रम का संचालन एआईकेएससीसी के वर्किंग ग्रुप के सदस्य डॉ. सुनीलम ने किया।

मध्य प्रदेश विद्युत संशोधन विधेयक- निजी कंपनियों को छूट और जनता की लूट

मौजूदा केंद्र सरकार विद्युत अधिनियम 2003 में व्यापक संशोधन करने जा रही है, जिससे निजी क्षेत्र की कंपनियों को सिर्फ मुनाफे से मतलब रहेगा पर उसका कोई दायित्व नहीं होगा। इस नए विधेयक को 17 अप्रैल 2020 को प्रस्तावित किया गया, जब पूरा देश लॉकडाउन में फंसा हुआ था। इसके साथ ही लोगों को इस पर टिप्पणी करने के लिए महज 21 दिन दिए गए, खासकर जब लोगों के अभिव्यक्ति के साधन को निलंबित कर दिया गया था। भारी विरोध के कारण इसकी अवधि को 5 जून तक बढ़ाई गई।

विश्व बैंक, आईएमएफ, एशियाई विकास बैंक तथा अन्य बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव में तथाकथित ऊर्जा सुधारों के नाम पर केंद्र सरकार द्वारा विद्युत अधिनियम-2003 लाया गया। इसमें विद्युत नियामक आयोग के गठन के अलावा तीन प्रमुख उद्देश्य थे। विद्युत मंडलों का विखंडन कर उत्पादन, पारेषण एवं वितरण कंपनियों का निजीकरण, दूसरा विद्युत दरों में लगातार वृद्धि और तीसरा निजी और विदेशी निवेश को प्रोत्साहन। सन् 2000 में मध्य प्रदेश विद्युत मंडल का घाटा 2100 करोड़ रुपए था और 4892 करोड़ रुपए दीर्घकालीन ऋण था, जो पिछले 15 सालों में बढ़कर बिजली कंपनियों का घाटा और कर्ज 47 हजार करोड़ रुपए हो गया है। निजी कंपनियों से विद्युत खरीदी अनुबंध के कारण 2010 से 2019 अर्थात पिछले नौ सालों में बिना बिजली खरीदे 6500 करोड़ रुपए का भुगतान किया गया है। मध्य प्रदेश में ऊर्जा सुधार के 18 साल बाद भी 65 लाख ग्रामीण उपभोक्ताओं में से 6 लाख परिवारों के पास बिजली नहीं है और सभी गांव में बिजली पहुंचाने के सरकारी दावों के विपरीत मध्य प्रदेश के 54,903 गांवों में से अभी भी 3286 गांवों में बिजली नहीं पहुंची है।

-राज कुमार सिन्हा, बरगी बांध विस्थापित एवं प्रभावित संघ

वैश्विक महामारी के बीच दोहरी बाढ़ झेलती नर्मदा घाटी : एनबीए

मनावर। नर्मदा घाटी के करीबन 50 गांव पूर्ण रूप से डूब गए व सैंकड़ो गांवो में पानी घुस गया है। अचानक बाढ़ से जनजीवन और सैंकड़ों साल पुराने इन गांवों की खेती प्रभावित हुई है। जलस्तर बढ़ने और चारों तरफ पानी के होने से किसानों की खड़ी फसल तो गई ही, खेतों तक पहुंचने का रास्ता बंद हो गया और किसानों को फसलों की बर्बादी का मंजर देखते रहना पड़ा। मनावर तहसील का एकलबारा गांव हो या सेमलदा गांव, हर जगह यही दुर्दशा है। कवठी गांव के 27 किसानों की जमीन डूब गई उनको सर्वोच्च अदालत के आदेशानुसार 60 लाख रुपये हर्जाना आज तक नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण द्वारा नहीं दिया गया है। कई किसानों के पास आज आजीविका का कोई भी साधन नहीं, शिकायत निवारण प्राधिकरण की ओर से दोनों भाइयों को 60 लाख का आदेश प्राप्त हुआ है। आज दोनों भाइयों की स्थिति काफी गंभीर बनी हुई है। लेकिन धनराशी कब मिलेगी, पता नहीं ?

आज की स्थिति में जब जल स्तर 135 मीटर हैं, नर्मदा घाटी के लगभग हर गांव तक पानी पहुंच चुका है, लेकिन विकास प्राधिकरण के पुनर्वास आयुक्त, भूअर्जन अधिकारी जायजा लेने गांव नहीं पहुंचे। मीडिया द्वारा लगातार प्रसारित करने के बावजूद प्रदेश सरकार व बड़वानी, धार, अलिराजपुर, खरगोन के जिला प्रशासन ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी है। इस वैश्विक महामारी के दौर में, जहां पिछले ही साल की बाढ़ से नर्मदा घाटी के लोग अभी तक उबर नहीं पाए हैं, ऐसे में इस दोहरी डूब को झेलने के लिए सरकार व जिला प्रशासन ने लाखों किसानों, मछुआरों, आदिवासियों, केवाठों, पशुओं, जीवंत फसल को अपने हाल पर छोड़ दिया।

सरकार व जिला प्रशासन को जगाने हेतु, डूब प्रभावितों द्वारा गांव-गांव में क्रमिक अनशन सत्याग्रह शुरू किया गया। इस पर, बल प्रयोग करके सत्याग्रहियों को उठाया गया और बाढ़ प्रभावितों पर केस दर्ज किए गए। हम,नर्मदा घाटी में प्रशासन और सरकार की इस लापरवाही की निंदा करते हैं। हम मांग करते हैं प्रशासन दमन नीति छोड़, संवाद कर बाढ़ प्रभावितों का पूर्ण पुनर्वास सुनिश्चित करे।

सरदार सरोवर बांध से डूबे परिवारों को क्रमिक सत्याग्रह से जबरन हटाया

मनावर। सरदार सरोवर जलाशय में 133 मीटर से ऊपर जलस्तर पहुंचने से गांव के साथ कृषि भूमि डूब रही है। मध्य प्रदेश की शिवराज सरकार का चुप रहना ही केंद्र और गुजरात सरकार के सामने समर्पण करना चिंताजनक है। सरदार सरोवर के विस्थापितों के गांव, मुहल्ले-एकलबारा, सेमलदा, गांगली, उरदना, सेंगाव आदि गांवों के रास्ते डूब गए हैं तो साथ ही गाजीपुरा, धरमपुरी के नर्मदा किनारे रहने वाले मछुआरों के मकान डूबने की कगार पर हैं। सरकार का हाल यह है कि नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण का कोई भी पुनर्वास अधिकारी डूब गांवो में भी नहीं जा रहे हैं। ऐसी स्थिति को देखते हुए डूब प्रभावित निवासी अहिंसक तरीके से क्रमिक अनशन पर पिछले दो दिन से बैठे हुए थे। उनको मनावर नायब तहसीलदार हितेंद्र भावसार ने पुलिस बल के द्वारा जबरन हटाकर उनके पंडाल को भी तोड़ दिया गया और झंडे-बैनर भी निकाल लिए गए। ■

हरीश अड्यालकर : आजीवन फैलाते रहे समाजवाद

हरीश अड्यालकर (83) का जाना (03 सितंबर) समाजवादी विचार के एक प्रकाश स्तंभ का बुझ जाना है। कोरोना काल में उनकी और उनके बेटे की मृत्यु (04 सितंबर) समाजवादी परिवार के लिए बड़ी क्षति है। वे उस पीढ़ी के व्यक्ति थे, जिन्होंने विचार और संघर्ष को एक साथ जीया था। हालांकि ऐसे लोग पूरे देश में रहे हैं, लेकिन अब यह पीढ़ी धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। हरीश जी के जाने से यह अहसास और तीव्र होता जा रहा है। वे नागपुर से गुजरने वाले तमाम सामाजिक कार्यकर्ताओं, लेखकों और बौद्धिकों के लिए संघर्ष की राजनीति में भरोसा जगाते थे और विचारविहीन भटकते लोगों को राह दिखाते थे। वे थे तो यह यकीन होता था कि विचार है तो एक दिन वह अपने चाहने वालों की एक जमात पैदा करेगा, और जब लोग जुड़ेंगे तो वैसा समाज बनाने के लिए संघर्ष भी करेंगे।

डॉ. आंबेडकर की कर्मभूमि नागपुर में बाबा साहेब की इस महत्वपूर्ण बात को उन्होंने गांठ में बांध रखा था कि कोई भी विचार सिर्फ पुस्तकों में पड़े रहने से मर जाता है। उसे आगे बढ़ाने के लिए सोचने-समझने वालों की जरूरत होती है। इसी को ध्यान में रखकर हरीश अड्यालकर पिछले 45 वर्षों से लोहिया अध्ययन केंद्र चला रहे थे। मधु लिमये, जार्ज फर्नांडीस, कर्पूरी ठाकुर, रघु ठाकुर, किशन पटनायक जैसे तमाम समाजवादी कार्यकर्ताओं और विचारकों से वे निजी तौर पर जुड़े थे और उनके साथ संघर्ष में उतरे थे। रेलवे की नौकरी करते हुए अड्यालकर ने ट्रेड यूनियन की राजनीति की और उसी के साथ समाजवादी विचार से जुड़े। 1974 में जब जार्ज फर्नांडीस ने रेलवे की देशव्यापी हड़ताल की तो उन्होंने उनका पूरा साथ दिया। उस समय बड़ौदा डायनामाइट मामले के अभियुक्त जार्ज साहेब भूमिगत रहे और उन्होंने अड्यालकर के घर पर पनाह ली। ट्रेड यूनियन वाले नेता का तेवर हरीश जी में आखिर तक रहा। एक बिंदास मराठी और ट्रेड यूनियन नेता की तरह उनकी बातचीत में वही ठसक जीवन के आखिरी दिनों तक रही।

व्यावहारिक जीवन में संघर्ष की भाषा का प्रयोग और लेखन और विचार-विमर्श में विनम्र गंभीरता यह उनके व्यक्तित्व के दो पहलू थे। एक आयाम सड़क पर नारेबाजी और जेल यात्राओं से निर्मित हुआ था तो दूसरा अध्ययन मनन से। एक सच्चा समाजवादी बनता ही ऐसे है। उसकी कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं होता। हरीश जी भी लोहिया के उसी पथ के राही थे। अपनी बात रखने के लिए वे 'सामान्यजन संदेश' नाम की पत्रिका निकालते थे और उन्होंने उसके 129 अंक संपादित किए थे। सन् 2010 में लोहिया जन्म शताब्दी वर्ष के मौके पर उन्होंने 'लोहियाः तब और अब' शीर्षक से एक विशेषांक निकाला, जो बहुत चर्चित रहा। उसमें देशभर के समाजवादियों से लिखवाया और अच्छे संपादन और छपाई के साथ प्रकाशित करके उसे दूर-दूर तक सुधी पाठकों तक पहुंचाया। अध्ययन केंद्र चलाना, पत्रिका निकालना और बीच-बीच में साहित्यकारों, पत्रकारों और बौद्धिकों के व्याख्यान कराने के लिए संसाधन और ऊर्जा वे कहां से लाते थे, कई लोगों के लिए यह सोच पाना ही कठिन है। लेकिन जब हरीश जी जैसी वैचारिक प्रतिबद्धता हो तो लोग मिल ही जाते हैं मदद करने के लिए।

उन्हें नागपुर में भी वैसे लोगों का साथ मिल गया था और देशभर के लोगों से तो जुड़े ही रहते थे। बीच-बीच में उन्हें केंद्रीय हिंदी संस्थान, महाराष्ट्र राज्य हिंदी अकादमी का सहयोग भी मिला। राजनीतिक विचारों के लिए प्रतिबद्ध हरीश जी स्वयं नाटक भी लिखते थे और नागपुर आकाशवाणी से उसका निरंतर प्रसारण भी होता था। उनके जाने के बाद जो प्रकाश स्तंभ बुझा है, उसे जलाने और फिर से चलाए रखने की चुनौती उस पीढ़ी के सामने है जो डिजिटल हो चुकी है और जिसके भीतर विचारों और संघर्षों का वैसा समन्वय पाना कठिन है। फिर भी यह कहना युवा पीढ़ी के लिए अन्याय होगा कि वैसे लोग एकदम नहीं हैं। अड्यालकर के सपनों का समाजवादी समाज बनाने का प्रयास जारी रखना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। सामयिक वार्ता हरीश अड्यालकर को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

-अरुण त्रिपाठी

साथी ध्रुव सिंह परिहार नहीं रहे

समता संगठन से जुड़े साथी ध्रुव सिंह परिहार का 9 सितंबर को हृदयाघात से आकस्मिक निधन हो गया। कुछ दिन ही पहले उन्होंने मुझे फोन किया और बताया कि उनका बेटा भास्कर छात्र नेता है और कॉलेज में विद्यार्थी युवजन सभा का गठन कर सक्रिय है। अपने जुझारू साथी के आकस्मिक निधन पर सजप शोक व्यक्त करती है। ***-अफ़लातून***

बात नब्बे के दशक की है रामपुर बघेलान जिला सतना के जमुना ग्राम में बारूद फैक्ट्री के लगने का विरोध हुआ लगभग तैयार हो चुके प्लांट को पर्यावरण प्रदूषण के लोकहितैषी मुद्दे के कारण से स्थानीय ग्रामवासियो ने बंद कराने का निर्णय लिया। इस आंदोलन के प्रमुख स्थानीय नेताओं में स्व. बृजकिशोर द्विवेदी बड़कामन, स्व. अरुण त्यागी जी, 'स्व. ध्रुव सिंह परिहार ध्रुव भाई', नेतृत्व विंध्य समाजवादी धारा के प्रमुख स्व. जमुना प्रसाद शास्त्री जी का था, प्लांट उखड़ने के कगार पर था। एक रात ग्राम दुआरी उन्मूलन (शिवपुरवा) रामपुर बघेलान में स्व. ध्रुव सिंह जी की कुटिया में अम्बेसडर कार आकर रुकती है। उसमें बारूद फैक्ट्री के मैनेजर होते है। छोटे से गांव में नब्बे के दशक में एम्बेसडर का रात्रि 10 के लगभग आना, पूरे गाँव में सनाका खिंच गया। मैनेजर जो 55-60 की उम्र के रहे होंगे आये और ध्रुव सिंह जी से कहा कि बहुत अच्छा आंदोलन किया आपने। नेतागिरी इतनी ही की जाती है मैंने बहुत नेता देखे हैं, अटैची बढ़ाकर खोल के दिखाते हुए कहा, इसमें लगभग 20 लाख रुपये रहे होंगे कि इसे लीजिए और घर बनाइये अपनी माँ की सेवा कीजिये जीवन को खुशहाल बनाइये। स्व. ध्रुव सिंह जी जिनकी आर्थिक स्थिति कोई बेहतर नही थी अटैची ठुकराते हुए बोले-

''आपने मंत्री विधायक सांसद देखे होंगे नेता नहीं''

मैं महात्मा गाँधी विनोबा भावे की परंपरा का व्यक्ति हूं, यह नही लूंगा और आंदोलन चलेगा, आंदोलन चला और शांतिपूर्ण रूप से चला एक फैक्ट्री 'पूँजी' के खिलाफ सफल हुआ फैक्ट्री बंद हुई।

स्व. ध्रुव सिंह परिहार जी अब हमारे बीच नहीं है विनम्र श्रद्धासुमन।

-अम्बुज द्विवेदी

सामयिक वार्ता अब www.lohiatoday.com पर भी पढ़ सकते हैं।

रिचर्ड ग्रोव : नहीं रहा पर्यावरण का इतिहासकार

प्रकृति, पर्यावरण और पर्यावरण-संरक्षण के इतिहास पर 'ग्रीन इंपीरियलिज़्म' सरीखी चर्चित किताब लिखने वाले इतिहासकार रिचर्ड ग्रोव का जून 2020 में निधन हो गया। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अल्फ्रेड क्रॉसबी, डोनाल्ड वोर्स्टर, जॉन मैकनिल, रोड्रिक नैश सरीखे जिन इतिहासकारों ने पर्यावरणीय इतिहास की ओर दुनिया भर का ध्यान खींचा। उनमें रिचर्ड ग्रोव उल्लेखनीय हैं।

रिचर्ड ग्रोव ने ससेक्स यूनिवर्सिटी में 'सेंटर फॉर वर्ल्ड एनवायरमेंट हिस्ट्री' की स्थापना की, जिसने वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय इतिहास के अध्ययन को बढ़ावा दिया। अपनी प्रभावशाली पुस्तक 'ग्रीन इंपीरियलिज़्म' में रिचर्ड ग्रोव ने यह दर्शाया कि यूरोप से कहीं पहले एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देशों में पर्यावरण से जुड़े सरोकारों और संरक्षण के प्रयासों का लंबा इतिहास रहा है। उन्होंने ध्यान दिलाया कि अठारहवीं सदी के मध्य से ही वैज्ञानिक प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण से जुड़े मुद्दों की ओर राज्य और समाज का ध्यान खींच रहे थे।

कभी उपनिवेश रहे एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों में औपनिवेशिक शक्तियों ने अपनी साम्राज्यवादी नीतियों से किस तरह प्रकृति, पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया। इसके क्या दूरगामी परिणाम निकले। इसके बारे में रिचर्ड ग्रोव ने अपनी पुस्तक 'इकोलॉजी, क्लाइमेट एंड एम्पायर' में गहराई से लिखा। रिचर्ड ग्रोव की यह किताब पंद्रहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी तक पर्यावरण, जलवायु से जुड़े सरोकारों और उपनिवेशवाद के अंतर्गुंफित इतिहास का सघन ब्योरा देती है।

डच, फ्रांसीसी और अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनियों और आगे चलकर यूरोपीय साम्राज्यों ने अपने व्यापारिक मुनाफे के लिए कैसे पर्यावरणीय संतुलन को तहस-नहस कर डाला, इस विषय में रिचर्ड ग्रोव ने विस्तार से लिखा। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान समय में दुनिया भर में गहराते जा रहे जलवायु संकट को समझने के लिए हमें उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के इतिहास को भी जानना होगा। रिचर्ड ग्रोव ने परिस्थितिकीय साम्राज्यवाद (इकोलॉजिकल इंपीरियलिज़्म) के इतिहास लेखन से जुड़ी इकहरी धारणाओं को जबरदस्त चुनौती अपने विचारोत्तेजक लेखन के जरिये दी।

जुलाई 1956 में पैदा हुए रिचर्ड ग्रोव की पढ़ाई घाना और इंग्लैंड में हुई थी। उनके माता-पिता भी अपने समय के जाने-माने भूगोलविद् थे। उन्होंने कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से इतिहास में पीएचडी की। वे पर्यावरणीय इतिहास की प्रसिद्ध पत्रिका एनवायरमेंट एंड हिस्ट्री' के संस्थापक-संपादक थे। साथ ही वे कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी और आस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी से संबद्ध रहे। भारतीय इतिहासकार विनीता दामोदरन उनकी पत्नी हैं। वर्ष 2006 में आस्ट्रेलिया में हुई एक सड़क दुर्घटना में रिचर्ड ग्रोव गंभीर रूप से घायल हो गए थे, जिससे उनकी कार्यक्षमता बुरी तरह प्रभावित हुई थी। पर्यावरण के अप्रतिम इतिहासकार रिचर्ड ग्रोव को सादर श्रद्धांजलि। ***उपेंद्र शंकर*** ■

वार्ता के सभी ग्राहकों-पाठकों से निवेदन है कि अगर आपके पास ईमेल आईडी या व्हाट्स ऐप नंबर है तो कृपया उपलब्ध करा दीजिए ताकि आपको वार्ता ऑनलाइन भेजी जा सके।

आप अपनी ग्राहकी का नवीकरण भी करा लें। प्रकाशित वार्ता डाक से भेजी जाएगी। इसके साथ ही वार्ता को आर्थिक सहायता देने में सहयोग करें।

सामयिक वार्ता R.N.I. पंजीयन संख्या 31211/77

साथी स्वाति स्मृति अंक पर पाठकों के विचार

स्वाति जी की स्मृति में एक पूरे अंक को संयोजित करके आपने सराहनीय काम किया। हमें 1976 से जीवन के अंतिम दिनों के बीच उनको पिट्सबर्ग से लेकर काशी तक निकट से जानने का अवसर रहा। समाजवादी अध्ययन केंद्र तो उनके आवास से ही संचालित हुआ करता था। उन्होंने काशी विश्वविद्यालय अध्यापक संघ के उपाध्यक्ष के रूप में हमारा नेतृत्व भी किया। हम शिक्षक के रूप में एक दशक तक सहकर्मी रहे। हमारी पारिवारिक निकटता थी। इसीलिए उनके व्यक्तित्व और कर्म से संबंधित अनेकों स्मृतियां हैं। अलविदा, स्वाति जी!

-आनंद कुमार, समाजशास्त्री और जेएनयू से सेवानिवृत्त प्रोफेसर

सामयिक वार्ता पत्रिका का 'साथी स्वाति स्मृति अंक' मिला। पत्रिका में उनके बारे में इतना कुछ पढ़कर मन श्रद्धा और बेचैनी से भर गया। मुझे इसकी पीड़ा और गहरी हो गई कि इस विशेष अंक के लिए मैं कुछ लिख नहीं सका। दरअसल मेरी उनसे मुलाकात इतनी संक्षिप्त और सहज रही है कि उसे शब्दों में कह पाने की कठिनाई से मैं मुक्त ही नहीं हो पाया। बनारस में अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के आयोजनों के संदर्भ में मेरी उनसे पहली बात हुई थी। कुछ संपर्क के छात्रों को शिविर में शामिल करना था, फिर सारनाथ सम्मेलन में मुलाकात हुई, यहां उत्तर प्रदेश में समान शिक्षा आंदोलन के मंच से काम करने का तय हुआ था।

इलाहाबाद के सम्मेलन और दिल्ली की रैली की तैयारी के संदर्भ में मुलाकात होती रही। स्वाति जी से मेरी सबसे जीवंत और आखिरी मुलाकात लखनऊ की थी। 23 जनवरी 2019 को श्री जय नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ द्वारा आयोजित 'भाषा शिक्षा और संविधान' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में यह मुलाकात हुई थी। यहां हम अधिक जीवंत और गंभीर चर्चाओं से जुड़े रहे। प्रो. मधु प्रसाद जी, अफलातून जी और स्वाति जी।

कार्यक्रम पूरा हो जाने के बाद हम कॉलेज के गेट पर घंटों बैठे रहे और सेमिनार की बहसों को व्यावहारिक और जमीनी आंदोलन का रूप देने तथा समान शिक्षा आंदोलन, उत्तर प्रदेश को मजबूत करने का कार्यक्रम बनाते रहे। असल में स्वाति जी की सहजता हमारे लिए बड़ी चुनौती रही है। उनके व्यक्तित्व में कोई दोहरापन नहीं था, कोई दंभ नहीं था और आज के संगठनों के तमाम अगुआ लोगों की तरह का नौकरशाहाना रवैया छू भी नहीं सका था उनको। आप अपने को कितना भी चतुर क्यों न समझते हों, उनके साथ वादाखिलाफी नहीं कर सकते थे, उनकी राजनीतिक और सांगठनिक अपेक्षाओं के साथ लापरवाही नहीं कर सकते थे।

उन्होंने हमें उस धैर्य और सहजता की व्यावहारिक प्रेरणा दी, जो किसी लंबी लड़ाई में जीत के लिए आवश्यक होती है। आज जब वे भौतिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं फिर भी निरंतर हमारी निगहबानी करती प्रतीत होती हैं और होती रहेंगी!

-डॉ चतुरानन ओझा, समान शिक्षा आंदोलन, उत्तर प्रदेश

राय-आलोचना देने में समय लगेगा। आराम से पढ़ेंगे। बेशक, काफी समृद्ध अंक है। नजर तो पूरे पर डाल ली। आपकी मेहनत साकार हुई है। हम दोनों चाव से पढ़ेंगे। तहेदिल मुबारक।

-अनिल सदगोपाल, अभाशिअमं, अध्यक्ष मंडल सदस्य

स्वातिजी की याद लोगों के मन में सकारात्मक और गहरी है। अंक देख कर अच्छा लगा।

रूपरेखा वर्मा, पूर्व विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, लखनऊ विवि.

स्वाति जी का बहुमुखी व्यक्तित्व जीवंतता के साथ उभरता है। उन्हें ठीक से जानना खुद को भी भीतर से मजबूत करने जैसा है। संपादकीय श्रम सार्थक हुआ है। ***-ज्ञानेन्द्रपति, प्रसिद्ध कवि***

शुक्रिया। स्वाति से जुड़ते हुए इतने सारे लोगों से जुड़ना भी साथ में हो रहा है। ***-लाल्टू, प्रसिद्ध प्रगतिशील कवि एवं प्रोफेसर***

सामयिक वार्ता के डॉ. स्वाति श्रद्धांजलि अंक प्रकाशित करने के लिए धन्यवाद। इसके साथ आज मुझे फिर से एक अलग तरह की भावना का अहसास हो रहा है।

-विकास गुप्ता, अभाशिअमं, लखनऊ विश्वविद्यालय

नमस्ते, अफलातून जी। पीडीएफ पर एक नज़र डाली। बहुत अच्छा बना है। पूरा पढ़ना तो ऑनलाइन बहुत मुश्किल हम जैसे कागजों के आदी लोगों को, लेकिन कुछ पन्ने पलटे-पढ़े। कृपया मेरे लिये 5 कॉपी छपी पत्रिका की रखें, मैं उन्हें आते-जाते आपसे कहीं ले लूंगा।

-जसवीर अरोड़ा

मुझे यह संकलन भेजने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। यह वास्तव में प्यार का एक श्रम है- मैं कवर पर स्वाति की प्यारी से तस्वीर को बहुत पसंद करती हूं- यह उसके व्यक्तित्व को अच्छी तरह से उजागर करता है। मैं पूरा पढ़कर बाद में प्रतिक्रिया दूंगी। ***-अनु वेणुगोपाल***

यह एक सुंदर संकलन है। साझा करने के लिए धन्यवाद। मुझे यकीन है कि हर कोई इसे पढ़कर भावुक होगा। ***-विशाखा***

आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। यह उनके जीवन और काम का वास्तविक आकलन है। मैं फिर से उन अलहड़ दिनों के कुछ क्षणों को पुनः याद दिलाने के लिए आपका आभारी हूं। मैं संपर्क में रहूंगी।

निष्कल

प्रभावशाली प्रकाशन। यह सब पढ़ने के लिए काफी समय लगेगा। अफलातूनजी, मैंने अपना लेख पढ़ा जो आपने पत्रिका में प्रकाशित किया है। इसमें इसे शामिल करने के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं आपको अपनी ओर से पूरे दिल से धन्यवाद करना चाहूंगा। ***-मृदुल मोदी***

धन्यवाद, अफलातूनजी। यादों का कितना खूबसूरत सेट। मैंने इसे स्कैन किया, लेकिन मेरी हिंदी बहुत खराब होने के कारण इसे ध्यान से पढ़ने के लिए अधिक समय की आवश्यकता होगी। मैं इसे उन छात्रों को भेजूंगा जो स्वाति को जानते थे। ***-एंड्रयू लिन***

वार्ता की प्रति मिली। स्वाति जी को समर्पण। अच्छा प्रयास। वो इसकी हकदार है। समूह के अस्तित्व में आने के बाद से उन्होंने समाजवादी जन परिषद के लिए ईमानदारी से काम किया।

-प्रीतीश आचार्य, भुवनेश्वर

आदरणीय स्वाति जी पर स्मृति अंक निकालने के लिए साधुवाद। वे एक अविस्मरणीय सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता थीं। सामयिक वार्ता में उनके लेख अक्सर पढ़ता था और उनकी जिजीविषा से बहुत प्रेरणा मिलती थी। उनकी स्मृति को सादर नमन। ***-प्रवीण मल्होत्रा, इंदौर***

स्वाति जी की स्मृति में विशेषांक की प्रति प्राप्त की। उनके बारे में पढ़ना प्रेरणादायक रहा। यह अंक उनके प्रति गहरी भावना को उजागर करता है। यह उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। आपके दुख और दृढ़ संकल्प में हम आपके साथ हैं। ***-गणेश देवी, अध्यक्ष, राष्ट्र सेवा दल*** ■

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अतुल कुमार प्रसाद सिंह द्वारा 14, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली-110091 से प्रकाशित और दीप कलर स्कैन (प्रा.) लिमिटेड, एफ-5, गली नं. 4ए, फ्रेंड्स कॉलोनी इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली-95 से मुद्रित। संपादक : अफलातून